ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

बृहद्-द्रव्यसंग्रह प्रवचन

श्रीमद् नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव विरचित
श्री बृहद्-द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
उपलब्ध अक्षरशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

विक्रम संवत
2076

वीर संवत
2546

ई. सन
2020

—: प्रकाशन :—

अष्टाह्निका महापर्व
कार्तिक शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा
के पावन अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250   फोन : 02846–244334

2. श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

अन्तिम तीर्थाधिनाथ शासननायक श्री महावीर भगवान के प्रवर्तमान जिनशासन में अति निर्मल शुद्ध मोक्षमार्ग जीवन्त रह पाया हो तो उसका मुख्य आधारस्तम्भ भगवान के निर्वाण के पश्चात् हुए अनेक महान सन्त दिगम्बर आचार्य भगवन्त और समर्थ भावलिंगी मुनिराज के प्रताप से। अखण्ड अभेद एकरूप स्वभाव के साथ तादात्म्य वर्तती परिणति के साथ प्रवर्तमान विकल्पात्मक अंश में करुणाबुद्धि से निस्पृह भाव से शास्त्ररचना करनेवाले भावलिंगी सन्तों का अपने पर महान उपकार वर्त रहा है। पंचम काल के जीवों का सद्भाग्य है कि अनेक मिथ्या अभिप्राययुक्त अन्यमत विशाल संख्या में मौजूद होने पर भी परम निर्मल पवित्र जिनमार्ग तथा शास्त्र मौजूद हैं। जिनसे जीव अखण्ड मोक्षमार्ग को प्राप्त कर सकता है।

'बृहद्-द्रव्यसंग्रह' ग्रन्थ श्रीमद् नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव द्वारा रचित है। यह लघुकाय ग्रन्थ द्रव्यानुयोग के सिद्धान्त का उत्तम ग्रन्थ है। ग्रन्थ में मात्र ५८ गाथायें ही होने पर भी समस्त जिनशासन के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन आचार्य भगवान ने स्वयं की प्रवीण भगवती प्रज्ञा के आधार से किया है। बृहद्-द्रव्यसंग्रह की टीका श्री ब्रह्मदेव विरचित संस्कृतवृत्ति नाम से प्रसिद्ध है। बृहद्-द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ में तीन अधिकार हैं। जिसमें प्रथम अधिकार में छह द्रव्य और पंचास्तिकाय का; दूसरे में सात तत्त्व और नौ पदार्थों का तथा तीसरे में निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का प्रतिपादन उत्तम शैली से किया गया है।

इस काल के अद्वितीय अजोड़ मोक्षमार्ग-प्रकाशक, जिनशासन दिवाकर श्री सीमन्धर भगवान के दिव्य सन्देश भरत में लानेवाले, निष्कारण करुणामूर्ति, अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का ज्ञान-ध्यानमय अध्यात्मरसलीन जीवन सर्वांग सुन्दर है। पवित्रता तथा पुण्य का अनोखा संगम आपश्री के समग्र जीवन में दृष्टिगोचर होता है। प्रशममूर्ति पूज्य बहनश्री चम्पाबहन के शब्दों में कहें तो आपश्री को श्रुत की लब्धि थी। श्रुतलब्धि के फलस्वरूप उनके रोम-रोम में जिनवाणी के प्रति प्रेम प्रवचनों में उफनकर बाहर आता था जो अनुभवगम्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री के ज्ञानगम्भीर गहरे वीतरागरस रहस्यमय प्रवचनों की धारा अविरतरूप से ४५-४५ वर्षों तक प्रवाहित रही है। देश-विदेश में आपश्री का प्रभावनायोग सूर्य की भाँति

दैदीप्यमान है। अनेक जीवों ने सत्य मोक्षमार्ग की राह पकड़ी है। पूज्य गुरुदेवश्री की भावि ॐकार ध्वनि की एक झलक उनके वर्तमान दिव्य प्रवचनों में दृष्टिगोचर हो रही है। पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना का रसपान करना, वह जीवन की एक आनन्दात्मक घड़ी है। पूज्य गुरुदेवश्री मंगल, उत्तम और लोकोत्तम दिव्यपुरुष हैं। आपश्री की वाणी भी वैसी ही होगी न! बृहद्-द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ पर हुए प्रवचन प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। बृहद्-द्रव्यसंग्रह की ४७वीं गाथा का उल्लेख पूज्य गुरुदेवश्री के अन्य प्रवचनों में अनेक स्थलों में दृष्टिगोचर होता है। निश्चय तथा व्यवहार मोक्षमार्ग दोनों साथ में ध्यान में प्राप्त होते हैं—इस बात का सचोट निरूपण ४७वीं गाथा के आधार से करते हैं। **'दुविहं पि मोक्खहेउं जाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।'**

प्रस्तुत प्रवचन बाद में प्राप्त हुए प्रवचन हैं जो धारावाही गाथा संधिबद्ध नहीं है। परन्तु पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी पवित्र भावना के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ तैयार किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन के करकमलों में सादर समर्पित करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं। तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके आभारी हैं। तत्पश्चात् इस दिव्य वीतराग वाणी को सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट (www.vitragvani.com) के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने के पवित्र कार्य का सौभाग्य श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई को सम्प्राप्त हुआ। इन्हीं प्रवचनों को ग्रन्थारूढ़ करने का भी विशेष सौभाग्य ट्रस्ट को प्राप्त हुआ है। इसलिए इस प्रसंग पर बृहद्-द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ के विविध समय में हुए प्रवचन जो उपलब्ध हैं, उन्हें एकत्रित कर प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकाशित किये गये हैं। यह विदित हो कि इस ग्रन्थ पर सम्पूर्ण प्रवचन सी.डी. में अनुपलब्ध हैं किन्तु सद्गुरु प्रवचनप्रसाद (गुजराती दैनिक) पत्रिका में संकलितरूप से प्रकाशित हैं, जिनका गुजराती और हिन्दी संकलन भी पुस्तक के रूप में तथा पीडीएफ फॉरमेट में www.vitragvani.com पर उपलब्ध है, जिज्ञासु पाठक उनका भी लाभ ले सकते हैं।

प्रस्तुत प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। गुजराती भाषा में इन प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन्स तथा श्रीमती लक्ष्मीबेन सावला, विलेपार्ला द्वारा किया गया है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किये गये हैं। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्री सुधीरभाई शाह, सूरत तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा

किया गया है। हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त करें, इस उद्देश्य से प्रस्तुत प्रवचनों का हिन्दी अनुवाद एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राजस्थान) द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी सहयोगियों का आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोगपूर्वक किया गया है तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-गुरु-शास्त्र के प्रति क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट की मुमुक्षुजनों से प्रार्थना है कि यदि कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हम तक पहुँचाने का कष्ट करें, जिससे आगामी आवृत्ति में सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन www.vitragvani.com पर शास्त्र भण्डार में गुरुदेवश्री के शब्दश: प्रवचनों में उपलब्ध हैं।

पाठकवर्ग प्रस्तुत प्रवचनों का अवश्य लाभ लेते हुए आत्मकल्याण को साधे, इसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ला, मुम्बई

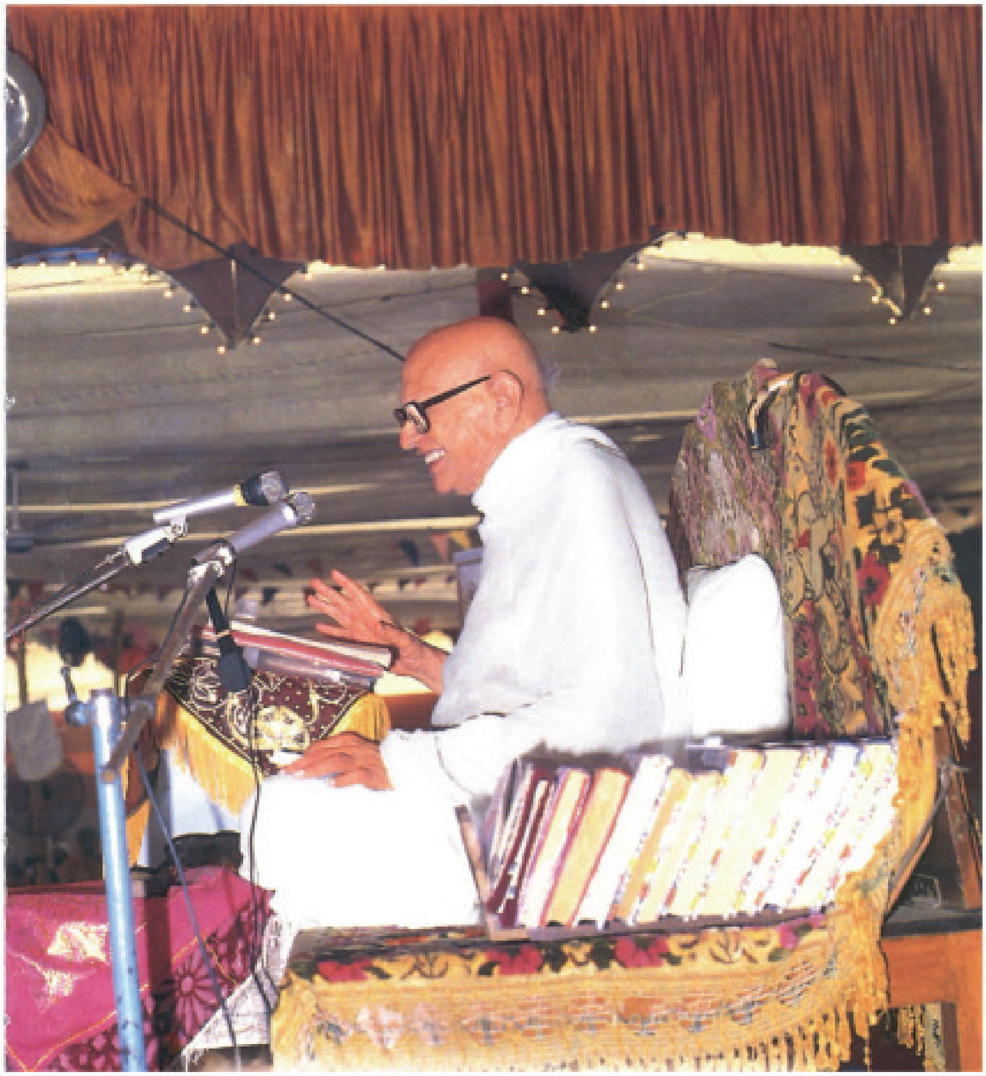

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य सद्‌गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध–विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का**

श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित

सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं – यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

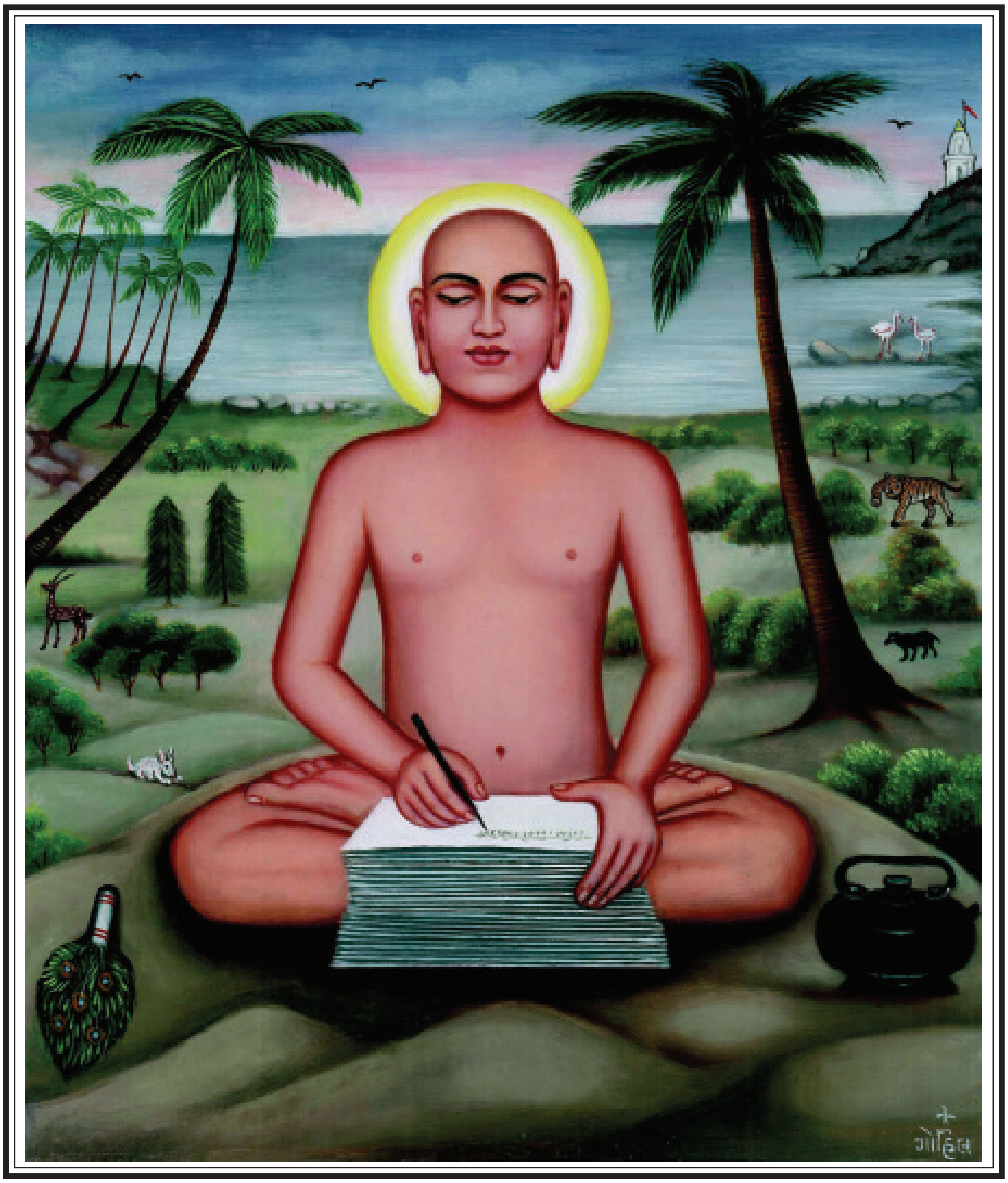

श्रीमद् नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव

ॐ

परमात्मने नमः

बृहद्-द्रव्यसंग्रह प्रवचन

श्रीमद् नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव विरचित श्री वृहद्द्रव्य संग्रह ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
उपलब्ध अक्षरशः प्रवचन

गाथा - १६

अथ पुद्गलद्रव्यस्य विभावव्यञ्जनपर्यायान्प्रतिपादयति—

सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाण-भेद-तम-छाया।
उज्जोदादव-सहिया पुग्गल-दव्वस्स पज्जाया।।१६।।

शब्दः बन्धः सूक्ष्मः स्थूलः सन्स्थान-भेद-तमश्छायाः।
उद्योतातप-सहिताः पुद्गल-द्रव्यस्य पर्यायाः।।१६।।

अब पुद्गल द्रव्य की विभावव्यञ्जनपर्यायों का प्रतिपादन करते हैं:—

थूल सूक्ष्म बंध तम संस्थान आतप भेद अर।
उद्योत छाया शब्द पुद्गलद्रव्य के परिणाम हैं।।१६।।

गाथार्थ :- शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत और आतप पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं।

टीका :- शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं।

अब विस्तार करते हैं:—भाषात्मक और अभाषात्मक के भेद से शब्द दो प्रकार के हैं। वहाँ अक्षररूप और अनक्षररूप भेद से भाषात्मक शब्द के दो भेद हैं। उनमें भी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पिशाची आदि भाषा के भेद से, आर्य अथवा म्लेच्छ मनुष्यों के व्यवहार के कारण अक्षरात्मक भाषा अनेक प्रकार की है। अनक्षरात्मक भाषा दो इन्द्रियादि तिर्यञ्च जीवों में और सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में होती है। अभाषात्मक शब्द भी प्रायोगिक और वैस्त्रसिक के भेद से दो प्रकार हैं। ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकम्। घनं तु कांस्यतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः॥ (वीणा आदि के शब्द को तत, ढोल आदि के शब्द को वितत मंजीरा आदि की ध्वनि को घन और बंशी आदि के शब्द को सुषिर कहते हैं।) इस श्लोक में कथित क्रमानुसार प्रयोग से हुए प्रायोगिक शब्द चार प्रकार के हैं। विस्त्रसा अर्थात् स्वभाव से हुए ऐसे वैस्त्रसिक शब्द बादलों आदि द्वारा होते हैं, वे अनेक प्रकार के हैं।

विशेष- शब्दातीत निज परमात्मा की भावना से च्युत हुए, शब्दादि मनोज्ञ और अमनोज्ञ पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त जीवों ने जो सुस्वर और दुःस्वर नामक नामकर्म उपार्जित किया था, उसके उदय से यद्यपि जीव में शब्द दिखलायी देता है तो भी उस जीव के संयोग से उत्पन्न हुआ होने से व्यवहार से जीव का शब्द कहलाता है, परन्तु निश्चय से तो वह शब्द पुद्गल स्वरूप ही है।

अब बन्ध का कथन किया जाता है, मिट्टी के पिण्डादिरूप जो यह अनेक प्रकार का बन्ध है, वह तो केवल पुद्गलबन्ध ही है और जो कर्म-नोकर्मरूप बन्ध है, वह जीव और पुद्गल के संयोगरूप बन्ध है। तथा विशेषः- कर्मबन्ध से पृथग्भूत स्वशुद्धात्मा की भावना से रहित जीव को अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से द्रव्यबन्ध कहलाता है, उसी प्रकार अशुद्धनिश्चयनय से जो यह रागादिरूप भावबन्ध कहलाता है, वह भी शुद्ध निश्चयनय से पुद्गलबन्ध ही है।

बिल्वफल आदि की अपेक्षा से वैर आदि का सूक्ष्मपना है और परमाणु को साक्षात् सूक्ष्मपना है। वैर आदि की अपेक्षा से बिल्व आदि का स्थूलपना है और तीनों लोक में व्याप्त महास्कन्ध में सबसे अधिक स्थूलता है।

समचतुरस्त्र, न्यग्रोध, सातिक, कुब्जक, वामन और हुण्डक के भेद से छह

प्रकार का संस्थान यद्यपि जीव को व्यवहारनय से है तो भी संस्थानरहित चैतन्यचमत्कार की परिणति से भिन्न होने से निश्चयनय से वह संस्थान पुद्‌गल का ही है। जीव से भिन्न जो गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण आदि व्यक्त-अव्यक्तरूप अनेक प्रकार के संस्थान हैं, वे भी पुद्‌गल ही हैं। गेहूँ आदि के चूर्णरूप तथा घी, शक्कर आदि रूप अनेक प्रकार के (संस्थान) भेद जानना।

दृष्टि को रोकनेवाले अन्धकार को तम कहा जाता है।

वृक्षादि के आश्रय से होनेवाले तथा मनुष्यादि की प्रतिच्छायारूप जो है, उसे छाया जानना।

चन्द्र के विमान में तथा जुगनू आदि तिर्यञ्च जीवों में उद्योत होता है।

सूर्य के विमान में और अन्य भी सूर्यकान्तमणि आदि विशेष प्रकार के पृथ्वीकाय में आतप जानना।

साराँश यह है कि जिस प्रकार जीव को शुद्धनिश्चयनय से स्वात्मोपलब्धि जिसका लक्षण है—ऐसी सिद्धस्वरूप स्वभाव व्यञ्जनपर्याय विद्यमान होने पर भी, अनादि कर्मबन्ध के वश से स्निग्धरूक्षस्थानीय (जिस प्रकार पुद्‌गल और पुद्‌गल के बन्ध में स्निग्धरूक्षत्व निमित्तभूत होता है, उसी प्रकार जीव-पुद्‌गलों के बन्ध में जो निमित्तभूत होते हैं—ऐसे) राग-द्वेष परिणाम होने पर स्वाभाविक परमानन्द जिसका एक लक्षण है—ऐसे स्वास्थ्य भाव से भ्रष्ट नर-नारकादि विभावव्यञ्जनपर्यायें होती हैं, उसी प्रकार पुद्‌गल को भी निश्चयनय से शुद्धपरमाणुरूप अवस्था जिसका लक्षण है—ऐसी स्वभावव्यञ्जनपर्याय होने पर भी, स्निग्ध-रूक्षत्व से बन्ध होता है। इस वचन से राग-द्वेष स्थानीय बन्ध योग्य स्निग्ध-रूक्षत्वपरिणाम होने पर ऊपर कहे हुए शब्दादिक से अन्य भी, आगमोक्त लक्षण सङ्कोच-विस्तार, दही-दूध आदि विभाव व्यञ्जनपर्यायें जानना।

इस प्रकार अजीव अधिकार में पूर्व सूत्र में कहे हुए रूपादि चार गुणयुक्त और इस सूत्र में कही हुई शब्दादि पर्याय सहित, अणु और स्कन्धरूप भेदवाले पुद्‌गलद्रव्य के संक्षेप व्याख्यान की मुख्यता से प्रथम स्थल में दो गाथायें पूर्ण हुईं॥१६॥

गाथा - १६, प्रवचन - १

ज्ञानस्वभाव है या चैतन्यस्वभाव को जानने से यह जड़ की पर्याय जड़ से होती है, उसका वह ज्ञाता है। उस जड़ की पर्याय का अस्तित्व आत्मा के कारण नहीं है। वह वहाँ विभाव व्यंजनपर्याय... समझ में आया? घट-घट। घड़ा आया न कल? जेठालालभाई! वह घड़ा कोई करता नहीं। (दुनिया से) यहाँ की बात उल्टी है। वह घड़ा, इस प्रकार के पुद्गलों का बन्ध अर्थात् सम्बन्ध बहुत पुद्गलद्रव्य से होता है। आत्मा के कारण कुछ होता नहीं। आत्मा माने कि मेरे कारण से होता है। उसके कारण मिथ्यात्व होता है, भ्रमणा होती है, अज्ञान होता है परन्तु पर में कुछ नहीं होता। घट न करे। लो! घड़ा-घड़ा। वह यह मकान। अर्थकार ने स्पष्टीकरण किया था। पुद्गलों का मकान इकट्ठा हो।

इसमें तो जरा ऐसा अर्थ मस्तिष्क में उठा कि घड़ा, मकान, लड्डू, दाल, भात, सब्जी या यह लाख और लकड़ियाँ इकट्ठी हुई, इसमें जीव का अमुक काल में निमित्त है और फिर तो ऐसे के ऐसे यह रहते हैं। इसलिए पुद्गल की व्यंजनपर्याय पुद्गल से होती है, ऐसा कहा है। अमुक ही है, फिर चालू रहता है; इसलिए ऐसा डाला है। फिर वह दूसरा अधिकार, दूसरे प्रकार का आयेगा, देखो! यह बात तो अपने उन पण्डित के साथ हो गयी थी। बात समझ में आया?

घड़ा हुआ, मकान हुआ, लड्डू हुआ, लकड़ी को लाख का चिपकना, उस समय मनुष्यादि का अमुक काल ही निमित्त है। बाकी वह बन्ध ऐसा का ऐसा कायम बहुत काल रहता है; इसलिए वास्तव में तो वह पुद्गल का ही बन्ध है। वह पुद्गल की द्रव्य-व्यंजन विभावपर्याय है। वह आत्मा के कारण हुई नहीं है। यदि आत्मा के कारण घड़ा हुआ हो तो कुम्हार निकल जाने पर घड़ा रहना नहीं चाहिए। यदि आत्मा के कारण मकान हुआ हो; उसके क्या कहलाते हैं? कारीगर। कारीगर। तो कारीगर निकल जाने के बाद रहना नहीं चाहिए। वह उसकी विभावव्यंजन पर्याय उसके कारण से हुई है। अज्ञानी की अल्पकालीन दृष्टि संयोग को देखनेवाली है, इसलिए उस समय यह हुआ,

पश्चात् उसके कारण से वह टिका रहा है। (ऐसा अज्ञानी देखता है)। ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। फूलचन्दभाई! यह घर किसी ने बनाया नहीं। यदि इसने किया हो तो यह न हो तो यह (घर) रहना नहीं चाहिए। भाई! यह तो ऐसा का ऐसा रहता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा का ऐसा रहता है। यह मकान देखो बहुत वर्ष से है। यदि कर्ता से, कर्ता के अस्तित्व से इसका अस्तित्व हो, निमित्त के अस्तित्व से यदि कुम्हार, कारीगर और कारीगर के अस्तित्व से इसका अस्तित्व हो तो यह अस्तित्व ऐसा रहना नहीं चाहिए। इसलिए आचार्यदेव कहते हैं कि घड़ा और घर और लड्डू, इन सबका बन्धन केवल पुद्गलद्रव्य की विभाव व्यंजनपर्याय के कारण हुआ है। दलीचन्दभाई! समझ में आया इसमें?

आत्मा इसका जाननेवाला-देखनेवाला है। जिस क्षण में संयोगी क्षणिक निमित्त घर में, मकान में अथवा घट में, पट में, रथ में जो चीज़ें बनती हैं, उस समय क्षणिक अमुक काल का निमित्त होता है। उसके अस्तित्व से यदि इनका अस्तित्व हो (तो इनके) निकल जाने के बाद यह सब चीज़ें रहना नहीं चाहिए। वह तो एक क्षणिक है, इस बात को गौण कर डाला। वह चीज़ ही अपने काल में इस प्रकार से बन्ध के विभाव—विकार व्यंजनपर्याय को प्राप्त हुआ, वह पुद्गल ही है। उसका अस्तित्व कोई जीव के कारण नहीं है। कहो, समझ में आया? ऐसे ज्ञान में जड़ की स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र विभाविक-विकारी पर्याय की बात है। कितने ही कहते हैं कि विकारी हो, वहाँ तो निमित्त होता है। विकारी हो तो निमित्त होता है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि निमित्त निकल जाने के बाद क्यों ऐसा का ऐसा रह गया यह सब। लड्डू ऐसे के ऐसे रहते हैं, दाल-भात रहते है, ढेबरा रहते हैं। रोटी की रचना तो अमुक समय होती है। फिर तो रोटी ऐसी की ऐसी, पाँच, सात, दस घण्टे पड़ी रहती है। इसलिए वह बन्धन जो है, परमाणु के पुद्गल का बन्धन वह पुद्गल की द्रव्यविभाविक विकारी व्यंजन पर्याय है। वह पुद्गल के कारण हुई है। जीव के कारण नहीं। जीव के कारण होवे तो जीव हट जाने के बाद वह वस्तु रहना नहीं चाहिए। टुकड़े हो जाना चाहिए। मोहनभाई! समझ में आया इसमें? गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : बनानेवाला तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बनानेवाला चला गया। वहाँ कहाँ बनानेवाला था?

यहाँ कहते हैं, मिट्टी का पिण्ड होना, घड़ा होना, मकान होना, लड्डू बँधना। लड्डू बाँधनेवाला कहे, मुझसे लड्डू बँधा। परन्तु वह तो दस घण्टे पच्चीस घण्टे पड़ा रहता है, उसका हाथ तो हट जाता है। यदि उसके कारण से हो तो हाथ हट जाने से लड्डू का चूरा हो जाना चाहिए। ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। उसकी पुद्गलद्रव्य की विभाविक व्यंजनपर्याय उसके कारण से होती है। यह आत्मा को जानना चाहिए। यह होता है और हुआ। होता है, हुआ और रहा। होता है, हुआ और रहा। वजुभाई! आत्मा से हुआ नहीं। वह बड़ा मकान-बकान नहीं? बड़ा इतना गोला रखा है। कहते हैं, हराम किसी ने रखा हो तो। अभिमान और राग जीव ने किया था। वह उसके कारण हुआ। यहाँ बेचरभाई। यहाँ हैं तो मकान खड़ा है वहाँ। यदि इनसे होता हो तो आज यहाँ आये, वहाँ रहता नहीं। ऐसा है नहीं। जेठालालभाई! यह क्या हुआ? बोटाद का मकान और एक भी मकान कोई करता नहीं। तुम्हारे कारण कुछ नहीं। कहो, समझ में आया?

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ के ज्ञान में जड़ का जिस समय का जो.... यह विकारी पर्याय की व्याख्या चलती है, उस समय जिसकी जो (पर्याय) हुई संयोग के बन्धन के स्कन्ध में, वह उसके द्रव्य की पर्याय है। वह पर्याय किसी के कारण से नहीं हुई है। कहो, समझ में आया? घट, घड़ा, मोदक आदि सब ले लेना। यह वस्त्र की तह पड़ती है, तह उखड़ती है। देखो न, ऐसे तह करते हैं न? मनुष्य कहे, मैंने तह की। वस्त्र की तह। भाई ऐसे ठीक से करते हैं न। तू करे तो निकल जाने के बाद तह नहीं रहनी चाहिए। वह तह तह के कारण से हुई है। इस जीव के कारण से हुई हो तो जीव कारण निकलने के बाद रहना नहीं चाहिए। ऐसा सम्बन्ध यहाँ टीकाकार ने स्पष्ट कर दिया है। कहो, समझ में आया?

केवल पुद्गल बन्ध ही है। अकेला पुद्गल का बन्ध है। **और...** अब भाई वह निमित्त सम्बन्ध साथ में रहता है, उसकी व्याख्या करते हैं। ...भाई! उसमें तो निमित्त अमुक काल रहकर छूट जाता है (और यह) ऐसा का ऐसा पड़ा रहता है। इसलिए उसे

पुद्गल बन्ध गिन डाला है। **और जो कर्म नोकर्मरूप बन्ध है....** आत्मा और कर्म शरीर, कर्म और नोकर्म शरीर का बन्ध, वह **जीव तथा पुद्गल के संयोग से उत्पन्न बन्ध है।** क्योंकि जीव और कर्म का, शरीर का निमित्त-निमित्त सम्बन्ध हो, तब ही वह रहता है। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध छूटने पर कर्म तथा शरीर और आत्मा पृथक् पड़ जाते हैं। ...भाई! क्या कहा? समझ में आया? खीमचन्दभाई! क्या कहा यह? वह बात सहज ही उस दिन न्याय दिया था उसमें। उन पण्डित के साथ, भाई। तब सहज चर्चा में आया था। इसमें सहज और अर्थ ही आ गया। यह शास्त्र में अर्थ आ गया। एक बड़ा पण्डित आया था, उसने चर्चा की थी। यह सब ऐसा है। कहे कि यह न हो तो कैसे रहता है यह? उसके अस्तित्व के कारण यदि इसका अस्तित्व का हो तो उसके जाने के बाद यह नहीं रहना चाहिए। यह पहले स्पष्टीकरण किया। अब समझ में आया? यह पुस्तक-बुस्तक का बाँधना-फाँधना, ऐसे जोड़ना, खुलना, अमुक होना वह जीव के कारण से नहीं है। जीव के अस्तित्व के कारण उसका अस्तित्व नहीं। वे सब पुद्गल परमाणु के स्कन्ध का जत्था विकाररूप परिणमने के काल में परिणमकर वह अमुक काल तक टिक रहे हैं। जीव उसका जाननेवाला है, देखनेवाला है, दृष्टा है, उसका मैं कर्ता या मेरे कारण उनका अस्तित्व है, यह मान्यता मिथ्या भ्रम और मिथ्यादृष्टि की है। जेठालालभाई! यह सोने के वह रव... भाई! वह भी ऐसे पड़े न, लाल हो न ठीक से। गर्म-गर्म होकर रस होकर फिर वह हो जाए न ढाले में ढाले। किसने ढाला ढाला? ढालिया किसने ढाला? वह पुद्गल की विभाविक द्रव्य व्यंजनपर्याय हुई है। जीव के कारण हुई नहीं है। जीव के कारण होवे तो जीव हो तब तक रहे और फिर वहाँ वह ढालिया हो जाए परमाणु पृथक्। पृथक् हो जाए। स्कन्धरूप और पिण्डरूप रहे नहीं। परन्तु पिण्डरूप उनका अस्तित्व कायम अमुक काल तक रहता है, इसलिए जीव के कारण ढालिया और ढाल हुआ नहीं। जेठालालभाई! भारी उल्टी बात जगत से, भाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु... उपस्थित था, तो जाने के बाद उसका चूरा हो जाना चाहिए। बस, इसलिए २५-५० वर्ष तक ऐसा का ऐसा १०० वर्ष रहे। इसलिए उसकी

अपनी व्यंजनपर्याय, विकारी व्यंजनपर्याय की योग्यता से रहा हुआ है। दूसरा कारण-फारण कोई उसमें है नहीं। काल का निमित्त तो सबके लिये है। कहो, समझ में आया?

ऐसे स्वतन्त्र विभाविक परमाणु के स्कन्धरूप पिण्ड को भी उसके काल में वह विकारी अवस्था होती है। मेरे काल में मेरे द्रव्य के आश्रय से मेरा ज्ञान होता है, पर के आश्रय से नहीं होता। ऐसी समझ करना, ऐसी श्रद्धा करना, उसका यह फल है। यह जानकर वह हेय है परन्तु जाननेवाला आत्मा हेय नहीं। जाननेवाला आत्मा ज्ञायक हूँ, जाननेवाला हूँ। यह होता है। क्यों? 'क्यों' ऐसा यहाँ विकल्प को अवकाश नहीं। और 'क्यों' ऐसी उसकी अवस्था को भी अवकाश नहीं है। वह जड़ की अवस्था जड़ के काल में, उसके काल में होती है। आत्मा के कारण से है नहीं। लो, उसमें बहुत बोल आये। घड़ा, मकान, लड्डू, दाल और भात को क्या कहा जाता है, वह सब? समझ में आया? ढालिया और यह आटा का गोरणा और ऐसा करना और ऐसे बाँधना और यह रोटी ऐसे हो, फिर ऐसे-ऐसे करे और डाले और ऐसे-ऐसे होती है न? वह सब पुद्‌गल द्रव्य की विभाविक व्यंजनपर्याय है। आत्मा के अस्तित्व के कारण तो आत्मा तो वह स्वयं टिक रहा है। आत्मा के अस्तित्व के कारण इस स्कन्ध का अस्तित्व होता है, ऐसा तीन काल में नहीं होता।

अब कर्म और नोकर्मरूप बन्धन। आठ कर्म के रजकण हैं, वे भी पुद्‌गलद्रव्य की विभाविक द्रव्य व्यंजनपर्याय है। समझ में आया? आठ कर्म जो ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि आठ कर्म, वह पुद्‌गलद्रव्य की विभाविक व्यंजनपर्याय है, उसे जीव को निमित्तपना खड़ा है। परन्तु है पुद्‌गल के काल में उसकी द्रव्य व्यंजनपर्याय हुई। यहाँ निमित्त भी खड़ा है। उसमें निमित्त भी खड़ा नहीं रहता। यहाँ निमित्त भी खड़ा रहता है, इतनी व्याख्या। इसलिए उस बन्ध से इसकी अलग व्याख्या की है। क्या कहा, समझ में आया?

आठ कर्म और यह शरीर। भाई! यह तो ठेठ तक जब तक निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध चौदहवाँ गुणस्थान है, तब तक निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध चालू रहता है। यहाँ आत्मा की योग्यता है। कर्म और शरीर को रहने की कर्म और शरीर के कारण से

योग्यता है। ऐसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी पृथक्-पृथक् अपने कार्य से परिणम रहे हैं। परन्तु उस बन्ध में निमित्तपना वहाँ उपस्थित नहीं रहता और इसमें उपस्थित है, इतनी बात का स्पष्टीकरण किया। बाकी है तो पुद्गलद्रव्य की व्यंजनपर्याय। यह शरीर इस आत्मा का बाँधा हुआ रहता नहीं। आत्मा का रखा हुआ रहता नहीं। आत्मा ने इसे बाँधा नहीं। आठ कर्म के रजकण आत्मा ने बाँधे नहीं। उन कर्म के रजकणों में पिण्ड होने की जो वर्गणा में ताकत के काल में वे हुए हैं। मात्र जीव का निमित्त होता है। निमित्त का कालभेद है, ऐसा नहीं। उसे निमित्त कब कहना? परन्तु यहाँ नैमित्तिक जड़ और कर्म और शरीर में नैमित्तिक अवस्था स्वतन्त्र स्वयं के कारण से हुई है। जीव को निमित्त कहा जाता है। इसलिए बन्ध में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धवाला एक बन्ध अलग समझाया है। कहो, समझ में आया?

कर्म-नोकर्मरूप बन्ध है, वह जीव तथा पुद्गल के संयोगरूप.... संयोग शब्द से (आशय) निमित्त। संयोग से अर्थात् निमित्त में वहाँ आगे दो खड़े दिखते हैं। मकान में, लड्डू में, घर में निमित्तपना साथ में खड़ा रहा नहीं दिखता। परन्तु है तो वह भी पुद्गल के ही कारण से और यह भी यह तो कर्म और नोकर्म पुद्गल के ही कारण से। परन्तु यह निमित्तपना साथ में खड़ा है। इतना बन्ध का दूसरा प्रकार बतलाने को व्याख्या की है। भाई! समझ में आया? ओहोहो!

यह शरीर, यह अँगुली ऐसे मोड़ने, मुट्ठी हो, यह हो वह पुद्गलद्रव्य की विभाव व्यंजनपर्याय है। आत्मा के अस्तित्व के कारण नहीं। हाँ, उसमें आत्मा का एक निमित्तपना उपस्थित / हाजिर है। परन्तु उसके कारण यहाँ नहीं है। लड्डू में तो लड्डू बाँधने के बाद लड्डू पड़ा भी रहता है। यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ निमिततपना सदा ही खड़ा है। नैमित्तिकपने की पर्याय भी सदा ही जड़ में जड़ के कारण से हुआ करती है। भाई!

कर्म-नोकर्मरूप बन्ध है, वह जीव तथा पुद्गल के संयोगरूप बन्ध है। निमित्तपना वहाँ उपस्थित है। उसमें निमित्तपना होने के काल में था, फिर लम्बे काल में नहीं था, इसलिए बन्ध के दो प्रकार टीकाकार ने स्पष्ट करके पृथक् किये हैं। बात समझ में आती है? यह पुद्गल-जड़ की विभावी पर्याय कर्म की, शरीर की है यह। आत्मा से हुई नहीं

है। आत्मा ध्यान रखे, इसलिए इसकी निरोग अवस्था करे, आत्मा ध्यान न रखे, इसलिए इसे रोग हो, इस बात में कुछ दम नहीं है। जेठालालभाई! यह डॉक्टर खड़े हैं, हों! तुमने रोग का कहा, यह डॉक्टर है। भाई डॉक्टर हो तो निरोग हो और डॉक्टर न हो तो रोग रहे, ऐसा है? इस शरीर की पुद्‌गल द्रव्य की विभाविक विकारी द्रव्यपर्याय द्रव्य की पर्याय है यह। यह पुद्‌गलद्रव्य की विकारी पर्याय है। आत्मा के कारण कहीं यह अस्तित्व नहीं रहता। कहो, समझ में आया?

देखो! उल्टी हो, अन्दर पाचन हो। यह दस्त जरा बन्धकोष जरा कठिन हो तो बनाये रखे पाँच मिनिट या फिर पृथक् पड़े। ताकत नहीं तेरी। कहो, निरोग शरीर हो तो ऐसा लगता है कि ... पाव घण्टे तक बाहर जाए वहाँ तक धार रखे या नहीं दस्त को? निकलने दे? हराम बात है, खोटी है। मूढ़ को मान्यता हो गयी है। इस शरीर की पर्याय में पुद्‌गल स्कन्ध रहना हो तो रहे। नहीं तो पृथक् पड़ जाए एकदम। बन्ध कोष पृथक् पड़कर वहीं का वहीं रहकर वस्त्र बिगड़ जाए। तेरी ताकत नहीं कि पुद्‌गल के स्कन्ध की विभाविक पर्याय का काल जो रहने का या पृथक् पड़ने का तेरा अधिकार उसमें नहीं है। ...भाई! गजब बात, भाई! पेशाब की खनक हुई हो तो जरा पाखाने तक जाए, वहाँ तक आने देता है? वह आत्मा के हाथ की बात है या नहीं? उठा जाए, कुछ इसके हाथ में रहता नहीं। मौसम्बी का पानी डाला, साथ में नीचे निकल जाए। एक परमाणु के पुद्‌गल के स्कन्ध का पिण्ड रहना हो तो रहे, पृथक् पड़ना हो तो पड़े। वह इसकी पर्याय के कारण से विभाव के कारण से होता है। आत्मा के कारण से नहीं। अब जरा विशेष बात लेते हैं।

और यहाँ पर विशेष यह जानना चाहिए.... यहाँ भी विशेष-खास बात तो यह जानना चाहिए। ऐसा कहते हैं। यह दो जानने की बात पहली की। **कर्मबन्ध से भिन्न जो निजशुद्धात्मा है....** कैसा है भगवान आत्मा? **कर्मबन्धन से भिन्न....** भगवान चिदानन्द -स्वरूप है। वह कर्म के पुद्‌गल के द्रव्य विभावव्यंजनपर्याय से भिन्न तत्त्व है। वह पुद्‌गल कर्म जो आठ कर्म जो द्रव्य विभावव्यंजनपर्याय है, उससे भगवान आत्मा पृथक् है। ऐसा जो निज शुद्धात्मा—निज शुद्ध आत्मा है।

उसकी भावना से रहित.... ऐसा चिदानन्द ज्ञायक आत्मा हूँ। कर्म और मुझे सम्बन्ध नहीं। मैं ज्ञायक चैतन्य ज्योति अनन्त गुण का पिण्ड निर्मलानन्द शुद्ध निर्दोष आत्मा हूँ। ऐसी जिसे श्रद्धा नहीं, ऐसा जिसे ज्ञान नहीं, ऐसी जिसे स्वरूप सन्मुख रमणता नहीं, उसे कहते हैं कि निज आत्मा **शुद्धात्मा की भावना से रहित....** उसकी भावना न करके राग-द्वेष और और पुण्य-पाप और देह क्रिया मैंने की, पर की क्रिया की, कर्मबन्धन मैंने किया, शरीर की क्रिया की, संसार की व्यवस्था की अवस्था मैंने की, ऐसी भावनावाला **जीव को अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से द्रव्यबन्ध कहलाता है....** भाई! ज्ञानी को द्रव्यबन्ध है नहीं, ऐसा कह दिया।

क्या कहते हैं, ध्यान रखना। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा, धर्मी जीव को यह कर्म पुद्गलद्रव्य की विभावव्यंजनपर्याय, उसका अस्तित्व मुझमें नहीं है। मैं तो ज्ञायक चैतन्य ज्ञानानन्द मूर्ति हूँ। ऐसा जिसे अन्तर भान है, उसे कहते हैं कि द्रव्यबन्धन ही नहीं है। इन आठ कर्म का उसे बन्धन ही नहीं है। क्योंकि बन्धरहित की अबन्ध स्वभावदृष्टि अबद्धस्पृष्ट अबद्धस्पृष्ट—कर्म से बँधा हुआ नहीं, ऐसा मैं आत्मा हूँ। देखो! यहाँ द्रव्यदृष्टि का वर्णन करते हैं। मेरा आत्मा जड़ से बँधा हुआ नहीं। चिदानन्द है, ज्ञायक है—ऐसी दृष्टि में उसके द्रव्यबन्ध गिना नहीं है। दलीचन्दभाई! समझ में आया?

परन्तु किसे आठ कर्म का बन्धन है? कि कर्म से रहित, बन्धन से रहित स्वभाव से अबन्धस्वभावी भगवान की श्रद्धा-ज्ञान और सन्मुख परिणाम की रमणता रहित अर्थात् कि स्वभाव की विभाव—स्वभाव से विमुख पुण्य-पाप को यह करूँ, दान करूँ, भक्ति करूँ, व्रत करूँ, विकल्प करूँ तो कल्याण होगा, ऐसी मिथ्याभावनावाला जीव, उसे **अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से द्रव्यबन्ध कहलाता है।** ऐसे जीव को अनुपचरित—यह कर्म का नजदीकपना है। जैसे स्त्री और मकान पृथक् बहुत दूर है, ऐसा नहीं है। इसलिए अनुपचरित कहा। ऐसे उपचाररहित, ऐसा नजदीक सम्बन्ध कर्म का है। असद्भूत। उसे भी कहीं आत्मा में वह कर्म प्रविष्ट नहीं हो गया, इसलिए असद्भूत। यह व्यवहार, वह निमित्त है इसलिए। उसे व्यवहार से द्रव्यबन्धन है। ज्ञानी को द्रव्यबन्ध है नहीं। क्या कहा, समझ में आया?

भाई! बात तो दो व्याख्या की। उसमें बन्धन की, लड्डू की, घट की, उसके कारण से हुई। फिर कर्म, नोकर्म में जीव का निमित्तपना है। परन्तु अब यहाँ निमित्तपना उड़ाया। भाई! वह जो कहा न (समयसार) १००वीं गाथा में? नये कर्म को निमित्त ही अज्ञानी है। ज्ञानी नये कर्म के बन्ध को निमित्त ही नहीं। वह तो स्वभाव ज्ञायक चैतन्य की अधिकता से परिणमता हुआ उसके बन्ध के भाव को छोड़ता हुआ, स्वभाव अबन्धरूप परिणम रहा है। इसलिए ज्ञानी को अनुपचार, अनुपचार अर्थात् उपचार नहीं, ऐसा बन्धन ज्ञानी को नहीं है। अज्ञानी को अनुचार ऐसा सम्बन्ध कर्म का असद्भूत अर्थात् आत्मा कर्मरूप नहीं हुआ, इसलिए उसे असद्भूत कहा है। वह कर्म।

व्यवहार से द्रव्यबन्ध कहलाता है। अज्ञानी को वह अनुपचार असद्भूत व्यवहारनय से बन्ध है। क्योंकि उसे आत्मा की भावना नहीं है। अबन्ध स्वभावी... अबन्ध स्वभावी... अबन्ध स्वभावी अबद्धस्पृष्ट हूँ। चिदानन्द ज्ञायक हूँ, मेरे स्वभाव में बन्ध नहीं। द्रव्य वस्तु मुक्त है। वस्तु चिदानन्द द्रव्य ही मुक्तस्वरूप है। ऐसे मुक्तस्वरूप की भावना जिसे नहीं और बन्धस्वरूप ऐसी पर्यायबुद्धि, निमित्तबुद्धि, वर्तमानबुद्धि में जुड़ा हुआ है, उसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से बन्धन है। बात समझ में आती है? देखो! यह अधिकार बहुत सरस है, हों! परन्तु जरा समझने जैसी बात है। दुनिया ने बाहर से लगायी है और वास्तविक पदार्थ क्या? अभी वास्तविक वे इस पदार्थ के कहनेवाले देव-गुरु-शास्त्र कौन? इतना भी जिसे विवेक करना न आवे, उसे उनके कहे हुए तत्त्वों में रागरहित चैतन्यतत्त्व कौन है? यह प्रतीति करना नहीं आता।

देखो! आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं कि बन्धन आत्मा का स्वरूप (नहीं है)। पुद्गल की व्याख्या चलती है न! पुद्गल के बन्ध की पर्याय कर्म-नोकर्म की है न? या कर्म-नोकर्म पुद्गल की पर्याय है। मुझमें—पर्याय में नहीं। मेरी पर्याय ज्ञायक द्रव्यस्वभाव के अधिकपने तैरता अबद्धस्पृष्टरूप से विषय पृथक्पने को प्राप्त करता, राग और शरीर की एकतापने को तोड़ता हुआ, स्वभावसन्मुख एकपने (रहता है) इसलिए ज्ञानी को व्यवहार से भी बन्धन नहीं है। समझ में आया? वह बन्धन होवे तो भी गिना नहीं है। क्योंकि छूटता जाता है और छूटता जाता है। छूटता जाता है,

इसलिए छूटता जाए। मैं अबद्धस्पृष्ट हूँ। आत्मा एकाकार ज्ञायक चैतन्यज्योति है। उसमें दया, दान, व्यवहार, राग वह मुझमें है नहीं। यह अभी कहेंगे। कर्म-फर्म तो नहीं परन्तु विकार भी मुझमें नहीं। ऐसी दृष्टि के विषय के द्रव्यस्वभाव को अन्तर में लेता हुआ, अन्तर सन्मुख होता हुआ, उसकी जिसे भावना है, उसे व्यवहार से भी बन्धन नहीं है। उसकी भावना जिसे नहीं है, किसकी ? निज शुद्धात्मा की। निज शुद्धात्मा द्रव्य लिया है अकेला। बन्धनरहित निज शुद्धात्मा चिदानन्द अनन्त गुण की खान, आनन्द का सागर, अमृत का पिण्ड प्रभु मैं हूँ। देखो! उस बन्ध के सामने पिण्ड चैतन्य पिण्ड लिया।

आत्मा द्रव्यस्वभाव से अमृतस्वरूप हूँ। ऐसी जिसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता नहीं और परसन्मुख जिसकी रमणता है। व्यवहार से कल्याण होगा और इससे कल्याण होगा, उससे कल्याण होगा। इसलिए निमित्तों को मिलाओ और राग को उत्पन्न करो और अच्छे-अच्छे प्रशस्त राग नये-नये करो। ऐसी बन्धबुद्धिवाले को नया बन्धन और असद्भूत व्यवहारनय बन्धन है। वह बन्धन पुद्गलद्रव्य की विभाविक व्यंजनपर्याय है। जीव में है नहीं। कहो, समझ में आया ?

अब अधिक बात तो अब थोड़ी लेते हैं। **उसी प्रकार अशुद्धनिश्चयनय से जो रागादिरूप भावबन्ध कहलाता है....** आत्मा ज्ञायकस्वरूप द्रव्यस्वभाव से, वस्तु स्वभाव से चिदानन्द और निर्मलानन्द पवित्र होने पर भी, उसकी पर्याय अर्थात् दशा अर्थात् अवस्था में अशुद्धनिश्चय—मलिनता का जो पुण्य-पाप, काम-क्रोध, दया-दान के विकल्प उठते हैं, वे अशुद्ध हैं। निश्चय (क्योंकि) उसकी पर्याय में होते हैं, इसकी दशा में होते हैं। अशुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा से **यह रागादिरूप भावबन्ध कहा जाता है...** भावबन्ध पुण्य-पाप मिथ्याभ्रान्ति, राग-द्वेष अज्ञान, वह विकार की अवस्था जीव की पर्याय में होती है। जीव की अवस्था में होती है। वह कर्म की अवस्था नहीं, वह जड़ की अवस्था नहीं। देखो! पुद्गलद्रव्य की विभाव पर्याय नहीं। उसके सामने डालना है यहाँ। वह जीव की विभाव पर्याय है। समझ में आया ?

वहाँ तो कहा था, भावनारहित को द्रव्यबन्ध है। भाई! इसलिए इसका अर्थ ही यह है कि भावनारहित को भावबन्ध है। जैसे आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान द्रव्यस्वभाव वस्तु

की खबर नहीं, उसे जड़ का बन्धन है। उसी प्रकार जिसे स्वभाव की खबर नहीं, उसे भावबन्ध है। नहीं तो द्रव्यबन्ध नहीं और भावबन्ध है, ऐसा नहीं बनता। क्या कहा? भले यहाँ बात नीचे नहीं की, परन्तु इसमें आ गयी। **उसकी भावना से रहित....** में यह बात आ गयी।

और इसी प्रकार.... ऐसा कहा है न? जैसे पुद्‌गलद्रव्य कर्म के आठ रजकण जड़ विभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय का बन्धन तो निज द्रव्य के स्व-सन्मुख परिणामरहित जीव को बन्धन किया गया है। वैसे अशुद्धनिश्चय से अज्ञानी ने किया हुआ विकारी भाव है। जड़ की पर्याय मैं करूँ, पर को मैं करूँ, पर है तो मुझे ठीक हो, मैं कुछ बराबर विचिक्षणता फैलाऊँ तो जगत की, घर की, दुकान की, लक्ष्मी की व्यवस्था बनी रहे। डॉक्टर दुकान में वहाँ बैठे हों तो ठीक से ध्यान (रहे), वह कम्पाउण्डर व्यवस्थित कर सके? चला करे?

इसी प्रकार... जेठालालभाई! डॉक्टर वहाँ करते हो न। मैं होऊँ तो ठीक और कम्पाउण्डर ठीक (नहीं)। इसी प्रकार तुम्हें ऐसा हो कि मैं होऊँ तो ठीक, लड़कों को आता नहीं। बेचरभाई! ऐसा वह सेठ कहता है कि मैं होऊँ तो चले, नौकर को आता नहीं। किसे आता है और किसे नहीं आता। जगत् के पुद्‌गल परावर्तन के परिणमन के काल में वह पुद्‌गल उस प्रकार की द्रव्य विभाविकव्यंजनपर्याय होती है। उसे आत्मा (निमित्त) कर्ता (कहा जाता है)। यहाँ कर्ता का विषय नहीं है, यहाँ अस्तित्व का विषय है। उसका अस्तित्व आत्मा के कारण नहीं है। यहाँ अस्तित्व का विषय है, इसलिए यह बात ली है कि द्रव्यबन्ध का अस्तित्व अज्ञानी को है। ज्ञानी को चैतन्य का अस्तित्व दृष्टि में है। भाई! इसलिए यह व्याख्या ली है।

धर्मी जीव को अस्तित्व / होनापना चैतन्य ज्ञायकस्वरूप हूँ, भले विकल्प है निमित्तपना, परन्तु उसकी मुख्यता नहीं। मुख्यता वस्तु के स्वभाव का अस्तित्व चैतन्य का, ध्रुव का, द्रव्य का अखण्ड परमपारिणामिकस्वभाव मेरा है। इसलिए उस द्रव्यदृष्टि के विषय में ज्ञानी का अस्तित्व द्रव्य का—वस्तु का है। उसे जड़ का, बन्धन का अस्तित्व उसे नहीं है। तथा भावबन्ध का अस्तित्व ज्ञानी को नहीं है। क्योंकि भावबन्ध तो एक

समय की विकारी पर्याय है। धर्मी की वह पर्यायबुद्धि टलकर स्वभावबुद्धि हुई है।

इसीलिए कहते हैं, **अशुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा से जो यह रागादिरूप भावबन्ध....** राग-द्वेष। इसमें व्यवहाररत्नत्रय आ गये। भाई! ...भाई! सच्चे सर्वज्ञदेव के अनुसार सच्चे शास्त्र और उसके अनुसार सच्चे सन्त गुरु आदि, उनकी श्रद्धा का राग अशुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा से वह भावबन्ध है। धर्मी को द्रव्यदृष्टि के अस्तित्व में वह विकल्प होने पर भी उसे भावबन्ध गिनने में नहीं आया। अबन्धस्वभाव की मुख्यता में भावबन्ध का जरा विकल्प होने पर भी उसे गौण करके उसे अभूतार्थ गिनकर, वह 'नहीं' ऐसा गिनकर, एक चैतन्य का अस्तित्व ज्ञानी की दृष्टि में रहता है। इसीलिए धर्मी को भावबन्ध भी नहीं है। भाई! समझ में आया इसमें?

ज्ञायक एक समय का चिदानन्द आत्मा परिपूर्ण प्रभु ईश्वर सम्पदावाला, अनन्त गुण की सम्पदा का अस्तित्व वह मेरा है, ऐसा जहाँ ज्ञान के विषय में-ध्येय में आया, उसे व्यवहाररत्नत्रय का अस्तित्व द्रव्यदृष्टि के विषय में नहीं आता। इसलिए वस्तु की दृष्टि में वह व्यवहाररत्नत्रय अभूतार्थ है। अर्थात् कि खोटा है, अर्थात् कि वस्तु में वह नहीं है। पर्याय में है तो पर्यायबुद्धि धर्मी की होती नहीं। समझ में आया? नारणभाई! देखो! जरा यह द्रव्यसंग्रह। इस द्रव्यसंग्रह में समयसार। सवेरे स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में समयसार। कितने ही लोग कहते हैं समयसार में है सब। यहाँ आत्मा में है। समयसार तो पृष्ठ है। आत्मा में आत्मा होगा या कहीं पृष्ठ में आत्मा होगा?

बात यह है, भगवान नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती द्रव्यसंग्रह में पुद्गलद्रव्य की व्यंजन विभाविक पर्याय का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि जीव का अबन्ध स्वभाव जाना, उसने बन्ध है, ऐसा हम नहीं कहते। तथापि अज्ञानी के अशुद्ध निश्चयनय से अज्ञानी को भावबन्ध है। अज्ञानी को है। जिसकी चैतन्यस्वभाव वस्तु हूँ, ज्ञायक हूँ—ऐसी दृष्टि नहीं, उसे अशुद्ध निश्चय से व्यवहाररत्नत्रय, वही मैं हूँ, वही मैं हूँ, इतना मैं हूँ, इससे मेरा हित और कल्याण है, ऐसे अज्ञानी को निश्चय से भावबन्ध है। अशुद्ध निश्चय से भावबन्ध है। परन्तु अब.... भावबन्ध समझ में आया? यह अटका है न? ज्ञायक, ऐसा चैतन्यस्वभावी वस्तु जाननस्वभावी आत्मा वह अटका हुआ भाव जो दया,

दान, भक्ति, व्यवहाररत्नत्रय, उसे अशुद्धनिश्चयनय से अज्ञानी को भावबन्ध है। क्योंकि उसकी पर्यायबुद्धि है। क्योंकि उसकी अंश पर रुचि है। अंशी के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। अंश के अस्तित्व को स्वीकार करता हुआ अंशी के अस्तित्व को चूक जाता है। धर्मी अंशी के अस्तित्व को स्वीकार करता हुआ अंश के अस्तित्व को अभूतार्थ गौणरूप से करता हुआ उसका ज्ञान करता है परन्तु वह बन्धन मुझे है, ऐसा द्रव्यदृष्टि में स्वीकार नहीं है। समझ में आया?

लो! धर्म कैसे हो? यह पुद्‌गलद्रव्य की विभावी व्यंजनपर्याय में यह अधिकार डाला है। टीकाकार की शैली.... किसलिए यह डाला? कि इस शब्द को बन्ध कहा जाता है, इस बन्ध को खबर है? शब्द को खबर है? खबर तो ज्ञायक को है। ज्ञायक को तो वस्तुदृष्टि हुई, तब ज्ञान होता है। वह ज्ञानवाला जानता है कि राग और बन्ध है, उसका मैं ज्ञाता हूँ। वह राग और कर्मबन्धन, वह मेरे अस्तित्व में नहीं है। मेरे त्रिकाल अस्तित्व में विकार और कर्म की नास्ति है तथा विकार और कर्म में मेरे चैतन्य के त्रिकाली द्रव्य के अस्तित्व का नास्तित्व है। दोनों में नास्ति लिया। वस्तु के स्वभाव में विकार का नास्तित्व और कर्म का नास्तित्व है। विकार वर्तमान एक क्षणिक और कर्म, उसमें आत्मद्रव्य का नास्तित्व है। एक के अस्तित्व में दूसरे का अस्तित्व नहीं रह सकता। इसीलिए कहते हैं कि अज्ञानी को अशुद्ध निश्चय से....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ५६

अथ शुभाशुभमनोवचनकायनिरोधे कृते सत्यात्मनि स्थिरो भवति तदेव परमध्यान-मित्युपदिशति —

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं।।५६।।

मा चेष्टत मा जल्पत मा चिन्तयत किं अपि येन भवति स्थिरः।
आत्मा आत्मनि रतः इदं एव परं ध्यानं भवति।।५६।।

अब, शुभाशुभ मन-वचन-काया का निरोध करने पर आत्मा में स्थिर होता है, वही परमध्यान है; इस प्रकार उपदेश करते हैं —

बोलो नहीं सोचो नहीं अर चेष्टा भी मत करो।
उत्कृष्टतम यह ध्यान है निज आतमा में रत रहो॥५६॥

गाथार्थ :— (हे भव्यो!) कुछ भी चेष्टा मत करो, कुछ भी मत बोलो, कुछ भी चिन्तवन मत करो; जिससे आत्मा, निजात्मा में तल्लीनरूप से स्थिर हो जाए। यही (आत्मा में लीनता ही) परमध्यान है।

टीका :— 'मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि' हे विवेकी पुरुषो! नित्य निरञ्जन और निष्क्रिय ऐसे निज शुद्धात्मा की अनुभूति को रोकनेवाले शुभाशुभ चेष्टारूप कायव्यापार, शुभाशुभ अन्तर्बहिर्जल्परूप वचनव्यापार और शुभाशुभ विकल्पजालरूप चित्तव्यापार किञ्चित् भी मत करो; 'जेण होइ थिरो' जिससे अर्थात् तीन योगों के निरोध से स्थिर होता है। कौन ? 'अप्पा' आत्मा। कैसा स्थिर होता है ? 'अप्पम्मि रओ' सहजशुद्ध-ज्ञानदर्शनस्वभावी परमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान -ज्ञान-आचरणरूप अभेद-रत्नत्रयात्मक परम समाधि से उत्पन्न, सर्व प्रदेशों में आनन्द उत्पन्न करनेवाले सुख के आस्वादरूप परिणतिसहित निजात्मा में रत-परिणत-तल्लीन-तच्चित्ततन्मय होता है। 'इणमेव परं हवे ज्झाणं' यह जो आत्मा के सुखस्वरूप में तन्मयपना, वही निश्चय से परम अर्थात् उत्कृष्ट ध्यान है।

उस परम ध्यान में स्थित जीवों को जिस वीतराग परमानन्दरूप सुख का प्रतिभास होता है, वही निश्चयमोक्षमार्गस्वरूप है। वह अन्य किस-किस पर्यायवाची नामों से कहा जाता है, वही कहते हैं —वही शुद्धात्मस्वरूप है, वही परमात्मस्वरूप है, वही एकदेश-प्रगटतारूप विवक्षित-एकदेश-शुद्धनिश्चयनय से स्वशुद्धात्मा के सम्वेदन से उत्पन्न सुखामृतरूपी जल के सरोवर में रागादिमलरहित होने के कारण परमहंसस्वरूप है। इस एकदेश व्यक्तिरूप शुद्धनय के व्याख्यान को परमात्मध्यान-भावना की नाममाला में यथासम्भव सर्वत्र योजन करना।

वही परम ब्रह्मस्वरूप है, वही परम विष्णुस्वरूप है, वही परम शिवस्वरूप है, वही परम बुद्धस्वरूप है, वही परम जिनस्वरूप है, वही परम स्वात्मोपलब्धिलक्षण सिद्धस्वरूप है, वही निरञ्जनस्वरूप है, वही निर्मलस्वरूप है, वही स्वसम्वेदनज्ञान है, वही परम तत्त्वज्ञान है, वही शुद्धात्मदर्शन है, वही परमावस्थास्वरूप है, वही परमात्मा का दर्शन है, वही परमात्मा का ज्ञान है, वही परमावस्थारूप परमात्मा का स्पर्शन है, वही ध्येयभूत-शुद्ध पारिणामिकभावरूप है, वही ध्यानभावनास्वरूप है, वही शुद्धचारित्र है, वही परम पवित्र है, वही अन्तःतत्त्व है, वही परमतत्त्व है, वही शुद्धात्मद्रव्य है, वही परमज्योति है, वही शुद्ध आत्मा की अनुभूति है, वही आत्मा की प्रतीति है, वही आत्मा की संवित्ति है, वही स्वरूप की उपलब्धि है, वही नित्यपदार्थ की प्राप्ति है, वही परमसमाधि है, वही परमानन्द है, वही नित्यानन्द है, वही सहजानन्द है, वही सदानन्द है, वही शुद्धात्म पदार्थ के अध्ययनरूप है, वही परम स्वाध्याय है, वही निश्चय मोक्ष का उपाय है, वही एकाग्रचिन्तानिरोध है, वही परमबोध है, वही शुद्धोपयोग है, वही परमयोग है, वही भूतार्थ है, वही परमार्थ है, वही निश्चय पञ्चाचार है, वही समयसार है, वही अध्यात्मसार है, वही समता आदि निश्चयषड्आवश्यक स्वरूप है, वही अभेदरत्नत्रय स्वरूप है, वही वीतराग सामायिक है, वही परम शरण-उत्तम-मङ्गल है, वही केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण है, वही समस्त कर्मों के क्षय का कारण है, वही निश्चय-चतुर्विध-आराधना है, वही परमात्मा की भावना है, वही शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न सुख की अनुभूति परमकला है, वही दिव्यकला है, वही परम अद्वैत है, वही परम अमृतरूप परम-धर्मध्यान है, वही शुक्लध्यान है, वही रागादि विकल्परहित ध्यान

है, वही निष्कल शरीररहित ध्यान है, वही परम वीतरागपना है, वही परम साम्य है, वही परम एकत्व है, वही परम भेदज्ञान है, वही परम समरसीभाव है; इत्यादि, समस्त रागादि विकल्प-उपाधि से रहित परम-आह्लादरूप एक सुख जिसका लक्षण है—ऐसे ध्यानरूप निश्चय-मोक्षमार्ग के वाचक अन्य भी पर्यायवाची नाम परमात्मतत्त्व के ज्ञानियों द्वारा जानने योग्य हैं॥५६॥

मागसर शुक्ल १२, गुरुवार, दिनांक - २७-११-१९५२, गाथा - ५६, प्रवचन - २

५६वीं गाथा। इसमें.... अधिकार। वास्तव में यह निश्चयमोक्षमार्ग की बात है। निश्चयमोक्षमार्ग अर्थात् क्या? उसकी पर्याय का.... यह वर्णन किया जाता है। आत्मा ज्ञानादि अनन्त गुण का जो पिण्ड अर्थात् ध्रुवस्वभाव शक्तिरूप है, उसकी प्रतीति के अनुभव से होता जो वीतरागी भाव, उसमें जो परमानन्द का भासित होना, वही मोक्ष का मार्ग है। परमानन्द का अनुभव का प्रतिभास होना, वह मोक्ष का मार्ग है। अन्दर पुण्य-पाप के विकल्प दया, दान, भक्ति के आते हैं, वे सब आनन्द का प्रतिभास नहीं परन्तु वह दुःख का भास है। शरीर, वाणी, कर्म, वह चीज़ तो पर है। उसकी तो यहाँ बात है नहीं, परन्तु भगवान (आत्मा), देह और वाणी और मन से अतीत अर्थात् चैतन्यमूर्ति जो इतनी चीज़ है तीन से—देह, वाणी और मन से तथा विकार जो है, उससे भी अतीत रहनेवाला ऐसा ध्रुवस्वरूप, उसके सन्मुख होकर परमानन्द की शक्ति में से आनन्द का उछाला आकर परिणति की दशा में आनन्द के अनुभव का भास होना, वह निश्चय—सच्चा मोक्ष का मार्ग है। इसके अतिरिक्त एक भी कोई मोक्ष का सच्चा मार्ग नहीं है। उसे पर्याय नाम द्वारा यहाँ वर्णन किया है।

उन्नीसवाँ नाम आया। **वही अन्तरंग का सत्त्व है।** बीच में है। ज्ञानी का कार्य। **वही परमतत्त्व है।** कौन सा? यह पुण्यतत्त्व, वह परमतत्त्व नहीं; अजीवतत्त्व, वह परमतत्त्व नहीं। भगवान आत्मा एक समय की वर्तमान प्रगट अवस्था, उतना नहीं। एक समय की प्रगट अवस्था जितना नहीं। परन्तु पूर्ण शक्तिवान उसकी प्रतीति और.... कहो, समझ में आया? अर्थात् कि व्यवहाररत्नत्रय भी उत्कृष्ट तत्त्व नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा अनन्त गुण का अभेद स्वभावी पदार्थ, उसके अन्तर्मुख के झुकाव से जो वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान और आनन्द की परिणति / दशा हुई, उसे ही यहाँ उत्कृष्ट तत्त्व कहते हैं। वही सच्चा मोक्ष का मार्ग है और वही आत्मा को शान्ति का कारण है। समझ में आया? इसके अतिरिक्त व्यवहाररत्नत्रय सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान और उसकी जो प्रतीति और उन्होंने कहे हुए व्रत के विकल्पों का भाव, वह भी परमतत्त्व नहीं है। समझ में आया?

यहाँ पर्याय निर्मल संवर-निर्जरारूप आत्मा के आनन्द की व्यक्त / प्रगट दशा को परमतत्त्व और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। यह बीसवाँ बोल। तत्त्व अर्थात् भाव। वह परमभाव है, परमभाव है। है तो अवस्था, हों! यह स्वभाव त्रिकाल की बात नहीं है। वस्तु एक समय में कहीं प्रगटरूप सब अवस्था एक समय की अवस्था में कहीं पूरा तत्त्व आ जाता है? एक समय की अवस्था अर्थात् प्रगट दशा में कहीं पूरा तत्त्व नहीं आता। यदि पूरा आवे, तब तो एक समय की अवस्था पलटने से पूरे तत्त्व का भी नाश हो जाये। एक समय की जो अवस्था है, उसके अतिरिक्त का जो पूरा तत्त्व, उसे द्रव्यस्वरूप कहा जाता है। उसके अवलम्बन से प्रगट हुई वीतरागी आनन्द के अमृत के अनुभव की परिणति को यहाँ परमतत्त्व अर्थात् परमभाव कहा है। यह वीतरागी मोक्षमार्ग है। कहो, समझ में आया?

यह तो सभी बोल निश्चय मोक्षमार्ग—रागरहित चिदानन्द आनन्दकन्द को अनुकूल आत्मा को जो है, रागादि तो आत्मा की प्रतिकूल दशा है, आत्मा के स्वभाव को अनुकूल.... परमानन्द की जो परिणति अर्थात् पर्याय, वह वीतरागी मोक्षमार्ग कहो या परमभाव कहो। समझ में आया?

वही शुद्धात्मद्रव्य है,.... है तो यह पर्याय। ध्यान रखना। यह वाणी और कर्मरहित चैतन्य का भाव.... क्योंकि आत्मा परपदार्थ से अन्य भावस्वरूप है। अन्य भावस्वरूप है अर्थात् कि परपदार्थ से अभावस्वरूप है। समझ में आया? यह जो आत्मा, इसके स्वभाव की भान दशा जो प्रगट हुई आनन्द की, सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की पर्याय, उसे कहते हैं कि शुद्ध आत्मद्रव्य है। क्यों? कि पुण्य के परिणाम और

व्यवहाररत्नत्रय सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की प्रतीति के परिणाम, वह परद्रव्य है। वह शुद्ध आत्मद्रव्य नहीं। क्या अपेक्षा है, समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात! ....भाई! कहो।

आत्मा में देह-वाणी-मन तो परद्रव्य है। पाप परिणाम होना, वह तो परद्रव्य है। वह अस्तित्वद्रव्य है, परद्रव्य है। आत्मा में जो दया, दान, भक्ति और व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के परिणाम, वे शुद्ध आत्मद्रव्य नहीं। वह तो अशुद्ध आत्मद्रव्य है, इसलिए उसे पर गिना है। मात्र भगवान आत्मा के चिदानन्द आनन्दकन्द, आनन्दकन्द, केवलज्ञान की वेलड़ी का कन्द जो आत्मा, उसमें से प्रगट हुई उसके आश्रय से वीतरागी आनन्ददशा को, कहते हैं कि शुद्ध आत्मद्रव्य है। है तो वह पर्याय। समझ में आया? है तो वह पर्याय। परन्तु वह पर्याय शुद्धात्मद्रव्य के अवलम्बन से अभेद होकर प्रगट हुई है, इसलिए उसे शुद्धात्मद्रव्य कहा जाता है। निश्चयमोक्षमार्ग कहो या शुद्धात्मद्रव्य कहो, वे सब एक नाम से यहाँ कहे जाते हैं। समझ में आया?

आत्मा से पर जो देव-गुरु-शास्त्र, उन्हें यहाँ शुद्धात्मद्रव्य नहीं कहा। भाई! भगवान आत्मा.... जिसे तीन लोक के नाथ की वाणी कहे और सर्वज्ञ कहे, गुरु कहे या शास्त्र कहे, उसे यहाँ शुद्धात्मद्रव्य नहीं कहा। क्योंकि वह पर है। वह सब भगवान तत्त्व -द्रव्य से पर है। उसकी मान्यता करना जो सच्चे सन्तों की, सच्चे शास्त्र की, सच्चे सर्वज्ञ की, ऐसी मान्यता और उसकी ओर का ध्यान तथा उसकी ओर की व्यवहार आज्ञा का वर्तन, ऐसी कषाय की मन्दता भी शुद्धात्मद्रव्य नहीं है। क्योंकि वह राग है, इसलिए उसे अशुद्धात्मद्रव्य कहा है। समझ में आया? परन्तु वस्तुस्वभाव जो प्रवाह जिसकी परिणति—पर्याय—दशा का—प्रवाह जिसमें से बहता है, उसके अवलम्बन से जीव वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता की दशा प्रगट करके जिसमें प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव वर्ते, उसे शुद्धात्मद्रव्य कहते हैं। समझ में आया?

यह किसकी बात चलती है? यह धर्म के नाम की बात चलती है। धर्म कहो, निश्चयमोक्षमार्ग कहो या वीतरागी मोक्ष के कारण की पर्याय कहो। यह धर्म के नाम की बात चलती है। धर्म को इतने नाम से कहा जाता है। धर्म, वह शुद्धात्मद्रव्य है। लो। दूसरी भाषा यह की। समझ में आया? धर्म, वह शुद्धात्मद्रव्य है। है तो आत्मा की पर्याय

धर्म। धर्म, वह कहीं नया प्रगट होता है, वह कहीं त्रिकाली तत्त्व नहीं है। परन्तु त्रिकाली तत्त्व की दृष्टि, ज्ञान और चारित्र की अभेदता होकर प्रगट हुआ; इसलिए उस निर्मल वीतरागी पर्याय को शुद्धात्मद्रव्य कहने में आता है। धर्म अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य। अधर्म अर्थात् अशुद्धद्रव्य। वह आत्मा का मूल स्वभाव नहीं है। कहो, समझ में आया? फूलचन्दभाई!

शुद्धात्मद्रव्य। देखो! कितनी अपेक्षाएँ डालते हैं। बात तो मोक्षमार्ग जो निश्चय अर्थात् सत्य, जो आत्मा के स्वभाव के अवलम्बन से शान्ति की धारा प्रगट होती है। अनाकुल अकषायरस अकषायरस का कन्द आत्मा, उसके अवलम्बन से अकषाय परिणति का प्रवाह धारा बहती है, ऐसी पर्याय को भी यहाँ शुद्धात्मद्रव्य कहते हैं। समझ में आया? अब राग और पुण्य तथा मन और देह की क्रिया तो कहीं रह गयी। जगत जिसे धर्म के कारण कहता है कि यह कारण और यह कारण और यह कारण। भगवान! यह सब उपचार के कथन भले हों। परन्तु वस्तुस्थिति इस प्रमाण प्रगट हुए बिना उसे उपचार भी लागू नहीं पड़ता। कहो, समझ में आया? यह २१वाँ बोल हुआ।

वही परमज्योति है,... आत्मा द्रव्य में से द्रवकर, द्रव्य में से द्रवकर। द्रव्य में से अटककर आवे, वह तो विकार है। उसे तो ज्ञान भी कहते नहीं। परमज्योति। चैतन्यतत्त्व वह तो परमज्योति है ही। चैतन्य ज्योति वस्तु तो चैतन्य पिण्ड ज्योति है। परन्तु उसके अवलम्बन से जो सम्यक् मोक्षमार्ग, सम्यक् / सच्चा प्रगट हुआ, कहते हैं कि (वह) परमज्योति है। उसे हम परमज्ञान कहते हैं। ज्योति है। वह संसार (को) जलाने में समर्थ है। ज्योति जैसे अग्नि लकड़ी आदि जलनेयोग्य को जलाकर नाश करती है, उसी प्रकार भगवान आत्मा का परमज्ञान अन्तर्मुख की हुई निर्विकल्प आनन्द की दशा, उस दशा को परमज्योति कहते हैं। जिसमें संसारपर्याय नाश होने की सामर्थ्य है। समझ में आया? वह संसारपर्याय को नाश नहीं करता तो ज्योति प्रगट हुई तो संसारपर्याय के कारण का नाश होता है। फिर कारण का नाश होने पर अन्ततः संसार का नाश हो जाता है। पहले भाव का नाश होता है, फिर क्रम-क्रम से पूरे संसार का नाश होता है। मोक्ष की पर्याय होने पर संसार की पर्याय का नाश होता है। निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय होने

पर संसार के सारे (-सम्पूर्ण) पर्याय का नाश होता है। भाई! समझ में आया?

बात ऐसी है कि अहो! बाहर से यह चीज़ नहीं। क्योंकि चीज़ ही अन्तर की है। वस्तु ही स्वयं चिद्घन आनन्दकन्द केवलज्ञान की वेलड़ी का कन्द, जिसमें से केवलज्ञान की वेलड़ियाँ प्रस्फुटित होती हैं, लतायें प्रस्फुटित होती हैं। ऐसा भगवान ध्रुव नित्यानन्द प्रभु के अवलम्बन से हुआ अन्तर का ज्ञान, उसे परमज्योति कहो या मोक्षमार्ग कहो। बाकी रागादि, क्रियादि, वह कहीं आत्मा को परमज्योति नहीं कहते। कहो, समझ में आया?

वही शुद्ध आत्मा की अनुभूति है। २३वाँ बोल। वही शुद्धात्मा की अनुभूति, अनुभव है। आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वभाव, वह पुण्य-पाप का अवलम्बन छोड़कर, निमित्त की रुचि छोड़कर और स्वभाव के अन्तर निरालम्बी पदार्थ का अवलम्बन करे, ऐसी जो वीतरागी आनन्द की दशा, उसका अनुभव, उसे शुद्धात्मा की अनुभूति कहते हैं। मोक्ष का मार्ग कहो या शुद्ध अनुभूति कहो, शुद्ध आत्मा की अनुभूति कहो। इस आत्मा की अनुभूति में तीनों बोल आ जाते हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणी मोक्षमार्गः, ऐसा जो तत्त्वार्थसूत्र का भगवान 'उमास्वामी' का पहला सूत्र है, उसे इतने बोल से कहा जा सकता है। समझ में आया?

वही शुद्ध आत्मा की अनुभूति है। स्वभाव को अनुसकर स्वभाव की दशा का होना, भवना ऐसा जो आनन्द, चिद्घन आनन्दकन्द में से आनन्द की पर्याय की परिणति अन्तर प्रवाह बहे, उसे शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग कहते हैं। दूसरे को सच्चा मोक्षमार्ग भगवान नहीं कहते। मोक्ष का मार्ग हों, यह तो अभी। मार्ग से मोक्ष में जाया जाता है। कुमार्ग से नहीं जाया जाता। शुद्धात्मा की अनुभूति से मोक्ष की पर्याय होती है। शुद्धात्मा की अनुभूति के अतिरिक्त विकार की पर्याय के कारण से मोक्षपन्थ में नहीं जाया जाता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह.... है।

आत्मा अन्दर अखण्ड आनन्द के कन्द में पर्याय उछले, उछलती निरालम्ब के अवलम्बन से ऐसी दशा, उसे मोक्ष के पन्थ में जाने तो, मोक्ष में जाने का वह पन्थ है। वह पन्थ आत्मा की पर्याय में वर्तता है। जैसे बाहर का मार्ग सड़क पर वर्तता है। उसमें

मोक्ष का मार्ग आत्मा के द्रव्य की—आत्मद्रव्य की पर्याय में वर्तता है। पर्याय में वर्तता है, उसे पन्थ कहते हैं। पूर्ण कार्य हो, उसे मोक्ष कहते हैं। देखो! यह.... आया। भाई! कहो, समझ में आया?

वही शुद्ध आत्मा की अनुभूति है, वही आत्मा की प्रतीति है,.... लो, मोक्षमार्ग को आत्मा की प्रतीति कहा। तीनों को। समझ में आया? **वही आत्मा की प्रतीति है,....** यह २४वाँ बोल। यह बोल नहीं, भाई! समझ में आया? आत्मा की प्रतीति में तीनों आ गये। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। उसे कहते हैं कि वही आत्मा की प्रतीति है। वह तीन होकर आत्मा की प्रतीति है। तीनों होकर आत्मा की प्रतीति नाम से पहिचाना जाता है। समझ में आया? क्यों? कि पूरा स्वभाव जो शुद्ध, उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता के अंश लेकर आता है। इसलिए तीन की एकता को मोक्षमार्ग की सत्यता और शुद्धात्मा की प्रतीतिरूप से कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। गजब बात भाई! जगत को तो यह बाहर की कितनी सिरपच्ची। परन्तु सब बात तुम्हारी सच्ची, किन्तु यह प्रगटे कैसे? ऐसा पूछते हैं। परन्तु यह बात तो साथ की साथ चलती है कि वस्तु है त्रिकाली नित्यानन्द, उसके अवलम्बन से यह प्रगट होती है। इसके अतिरिक्त यह प्रगट नहीं होती। क्योंकि जिसमें शक्ति भरी हो, उस भण्डार में से परिणति प्रवाहित होती है तो शक्ति ध्रुव में अनन्त ज्ञान, आनन्द, दर्शन-त्रिकाल दर्शन, त्रिकाल ज्ञान, त्रिकाल चारित्र की शक्ति तो आत्मा में पड़ी है। समझ में आया? उसके अवलम्बन से जो दशा प्रगट हुई, उसके अवलम्बन से प्रगट हो, उसे शुद्धात्मा की प्रतीति कहते हैं। कहो, समझ में आया?

वही आत्मा की संवित्ति है,.... अर्थात् साक्षात्कार है। लो। यह आत्मा ज्ञान-दर्शन और वीतरागी चारित्र की रमणता में रहे, उसे ही आत्मा की संवित्ति अर्थात् साक्षात्कार कहते हैं। वह आत्मा का साक्षात्कार। कहो, समझ में आया? मोक्षमार्ग कहो या आत्मा का साक्षात्कार कहो। साक्षात्कार और मोक्षमार्ग में कोई अन्तर नहीं है। कहो, समझ में आया? **वही शुद्ध आत्मा की संवित्ति है,....** इसका अर्थ साक्षात्कार है। लोग नहीं कहते? कि आत्मा का उसे साक्षात्कार हुआ। कहते हैं, उस आत्मा का मोक्ष का

निर्मल स्वरूप, मोक्ष के कारण का प्रगट हुआ, उसे आत्मा का साक्षात्कार कहते हैं।

वही स्वरूप की उपलब्धि है,.... २६वाँ बोल। वही निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति। वह पर्याय में आत्मख्याति होती है। आत्मख्याति कहो, आत्मप्रसिद्धि कहो, आत्मस्वरूप की प्राप्ति कहो। समझ में आया? पुण्य और पाप वह तो विकार की ख्याति है, वह विकार की प्रसिद्धि है। शरीर, वाणी, वह तो जड़ की प्रसिद्धि है। ज्ञायक चैतन्य अखण्ड द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुई वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह आत्मख्याति है। वह आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति है। जो आत्मा जिस स्वरूप से है, उस स्वरूप से प्रतीति, ज्ञान और रमणता हुई, तब उस पर्याय को आत्मस्वरूप की प्राप्ति, ऐसा कहा जाता है। निश्चयमोक्षमार्ग पाया कहो या निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति कहो। समझ में आया?

लो! यह परस्वरूप की तो प्राप्ति नहीं। राग की प्राप्ति परन्तु वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं। निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति ऐसी जो आत्मा की परिणति, मोक्ष के मार्गरूप कारणरूप। वह स्वभाव के (अवलम्बन से), कारणपरमात्मा को, कारणपरमात्मा के अवलम्बन से प्रगट हुई वर्तमान दशा। कारणपरमात्मा आत्मा। उसे व्यवहारकारण नहीं। दया, दान, भक्ति, व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह कारण नहीं। कारणपरमात्मा के आश्रय से प्रगट हुई मोक्षमार्ग की दशा को निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति कहते हैं। वह कारणपरमात्मा भान में आया। कारण था तो सही। कारणरूप था। परन्तु प्रतीति, ज्ञान और रमणता हुई, तब कहते हैं, कारणरूप परमात्मा की प्राप्ति हुई। यह कारण है। वर्तमान मोक्ष के मार्ग का द्रव्य कारण है। दूसरा कोई कारण है नहीं। भारी सूक्ष्म बात! कहो, समझ में आया?

इस मार्ग से मोक्ष में जाया जाता है। दूसरे मार्ग से नहीं जाया जाता। मोक्ष जाने का अर्थ पूर्णता प्राप्त होना। वहाँ कहीं जाना होता नहीं। पूर्ण दशा की प्राप्ति की कार्यदशा के कारणरूप इस दशा का वर्णन चलता है।

वही नित्य पदार्थ की प्राप्ति है,.... लो! २७वाँ बोल। नित्य पदार्थ की प्राप्ति। नित्य तो था। ध्रुवरूप ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण का पिण्ड तो था, परन्तु प्रतीति, ज्ञान और चारित्र का अंश प्रगट हुआ तो नित्य पदार्थ की प्राप्ति हुई। नहीं तो अनित्य की प्राप्ति थी।

समझ में आया? पुण्य-पाप की प्राप्ति, वह तो अनित्य पदार्थ की प्राप्ति थी। दया, दान, भक्ति, व्रत के परिणाम की प्राप्ति, वह तो अनित्य पदार्थ की प्राप्ति थी। और निज स्वरूप की प्राप्ति के अतिरिक्त राग की प्राप्ति भी नित्य स्वरूप के आत्मतत्त्व की प्राप्ति के विरुद्ध की प्राप्ति थी। अस्ति से बात की है। उससे विरुद्ध की बात में यहाँ नास्ति.... समझ जाना।

नित्य पदार्थ की प्राप्ति। व्यवहाररत्नत्रय की प्राप्ति, वह तो अनित्य पदार्थ की प्राप्ति है। अपने में होनेवाला विकार, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, ज्ञान और कषाय मन्दतारूप भाव, वह अनित्य पदार्थ की प्राप्ति है। त्रिकाल ध्रुव चिदानन्द के अवलम्बन से श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र तथा आनन्द का भास, आनन्द का अनुभव, उसे नित्य पदार्थ की प्राप्ति कही जाती है। कहो, समझ में आया? ३० हुए, ३०।

वही स्वभाव से उत्पन्न हुआ आनन्द है। अब आनन्द। समझ में आया? **वही परमसमाधि है,....** २७ हुए। २८वाँ। **वही परमसमाधि है,....** लो! लोग कहते हैं न कि **'समाहिवर मुत्तं दिन्तु'** नहीं माँगते? परन्तु खबर नहीं कहाँ समाधि रहती होगी। परमसमाधि। परम-सम-आधि। ऐसे शान्त.... शान्त.... शान्त.... अनाकुल अकषाय स्वभाव में से निकली हुई परिणति अर्थात् पर्याय, उसे परम समाधि कहते हैं। बाकी राग को, पुण्य को समाधि नहीं कहते। व्यवहार समाधि का भले उसे उपचार आता हो। व्यवहाररत्नत्रय.... आता हो परन्तु वह परमसमाधि नहीं है। समाधि। लोग कहते हैं, इन्होंने समाधि लगा दी। आत्मा के भान बिना समाधि कहाँ से आती थी? हाथ लगाकर ऐसे बैठ जाये। परन्तु आत्मा ज्ञायक, वर्तमान चलती पर्याय को अन्तर्मुख झुकाकर जो दशा प्रगट हुई, उस वीतरागी अंश को मोक्षमार्ग और परमसमाधि कहते हैं। कुम्भक और रेचक और.... ऐसा कराना और वैसा कराना। वह समाधि-बमाधि नहीं है। इंगला और पिंगला और अमुक आता है न बहुत? वह सब समाधि-फमाधि नहीं है।

ऐसा जो सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मद्रव्य, आप्त ने कहा हुआ आत्मद्रव्य, आगम ने कहा हुआ आत्मद्रव्य और गुरु ने कहा हुआ जो ऐसा आत्मद्रव्य। आप्त, आगम और पदार्थ। समझ में आया? उन्होंने कहा हुआ जो ऐसा आत्मा। देखो! ऐसी आत्मा की व्याख्या भी सर्वज्ञ जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हो सकती। समझ में आया?

क्योंकि एक समय की पर्याय का परिणमन त्रिकाल ध्रुव.... विकार का होने पर भी वह परमसमाधि मोक्ष का मार्ग नहीं है। राग होने पर भी वह परमसमाधि नहीं है, निमित्त होने पर भी नहीं है। सभी परद्रव्य, वे परमसमाधि नहीं हैं। अरे! परन्तु परमसमाधि का व्यवहार कारण है या नहीं? समझ में आया? परन्तु व्यवहारकारण का अर्थ क्या? निश्चय कारण भगवान आत्मा परमसमाधि का है। ऐसी अन्तर के कारण भगवान को प्रतीति में, ज्ञान में लिये बिना निमित्त को व्यवहारकारण भी नहीं कहा जाता। कहो, समझ में आया?

बात यह है कि जिसे यह तो आत्मा की दरकार होकर पड़ी हो, उसे यह बात पहली श्रवण में आवे। नहीं तो यह बात अन्दर में उकताहट लगे ऐसी है। और वस्तु तो उकताहट नहीं, आनन्द है। परन्तु बाहर से सिरपच्ची मान बैठा है और ऐसी सम्प्रदाय की रीति में फंस गया है कि कहीं चैतन्य के मूल तत्त्व का पता नहीं लगा। इससे होता है और इससे होता है और व्रत पालते हैं, प्रतिमा धारते हैं, यात्रा करते हैं, भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं। भगवान! यह आत्मा एक समय में परिपूर्ण अमूल्य-अनमूल्य चैतन्यरतन के अवलम्बन बिना यह मार्ग प्रगट हो, ऐसा नहीं है। और प्रगट हुए को परमसमाधि कहते हैं। कहो, समझ में आया? मुनि परमसाधि में वर्तते हैं। ऐसा नहीं कहते? सन्त परमसमाधि में वर्तते हैं। समाधि में अर्थात् श्वास चढ़ा दिया होगा?

आत्मा के स्वभावसन्मुख की दशा की वीतरागता प्रगट हुई, उसे परमसमाधि कहते हैं। बाकी सब असमाधि है। बाकी सब व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम असमाधि। निश्चय से। कहो, समझ में आया? सच्चे देव आप्त, गुरु और शास्त्र। आप्त अर्थात् सर्वज्ञ, गुरु अर्थात् निर्ग्रन्थ मुनि और उनके कहे हुए आगम। आप्त, आगम और गुरु। उनकी सच्ची प्रतीति के विकल्प का बहुमान आये बिना पहले रहता नहीं, तथापि कहते हैं कि उसे परमसमाधि नहीं कहते। क्योंकि आप्त, आगम और गुरु को यह कहना है कि अन्तर्मुख तेरे तत्त्व की खान को खोज। अन्तर जो खान में से निकले दशा, वह खान स्वभाव की, प्रतीति, अनुभव कर तो परमसमाधि होगी और मुक्ति होगी। नहीं तो मुक्ति होती नहीं। कहो, समझ में आया?

२९। **वही परमानन्द है,....** २८ है न? **वही परमानन्द है,....** वही परम आनन्द है। कहते हैं कि निश्चयमोक्षमार्ग कहो या परम आनन्द कहो। कहो, समझ में आया? लोग कहते हैं कि चारित्र तो बापू! बालू (रेत) का ग्रास! दुःखदायक है चारित्र? दुःखदायक कर दिया। अज्ञानी ने दुःखदायक कर दिया। मूढ़ जीवों को चारित्र जो परमानन्द है, उसे दुःखदायक (माने) तो मिथ्यादृष्टि है। उसे चारित्र की खबर नहीं। कन्हैयालालजी! कहते हैं या नहीं? चारित्र दूध के दाँत से लोहे के चने चबाना। ऐसा करके चारित्र के प्रति अरुचि और द्वेष करते हैं। चारित्र को दुःखदायक मानते हैं। तब भगवान त्रिलोकनाथ कहते हैं, सुन शान्ति से। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों परम आनन्दस्वरूप है। इसमें जरा भी दुःख नहीं है। लोग कहते हैं, आहाहा! सन्तों को ऐसे बाघ फाड़ खाये, नंगे पैर चलना, चैन से आहार न मिले, ताजा गरम-गरम फुलके। खाने बैठे तब ताजा मिले न ऐसे? तवे में से उतरकर फुलका-रोटी जाये उसमें। और सामने रखा हो गरम-गरम। बापू! साधु को ठण्डा मिले, गरम मिले, कैसा मिले। सर्दी में ठण्डा मिले और गर्मी में गरम मिले। कितने दुःख मुनियों को, बापू! अज्ञानी मिथ्यादृष्टि चारित्र का अनादर करता है। वह चारित्र को समझता नहीं। चारित्र ऐसा नहीं हो सकता। चारित्र तो अमृत का आनन्द दे, वह चारित्र कहलाता है। कहो, ...भाई! यह लोग उल्टा अर्थ करते हैं। जिसका जितना भाग.... बड़ा.... लगता होगा चारित्र का या चारित्र सुलटा होगा? चारित्र अर्थात् अकषाय आत्मा की आनन्ददशा। उसे भगवान परमानन्द कहते हैं। अब उसे दुःखदायक मानता है। क्या हो? आहाहा! स्त्री, पुत्र, परिवार कुछ नहीं। एकल-दोकल रहना, बापू! ऊपर आकाश और नीचे धरती। कोई है?

पुराने लोग हो न बुजुर्ग-वृद्ध (वे ऐसा कहते हैं), अरे रे! ऐसा कहते हों। अरे रे! अब कोई आधार नहीं। अपने.... थोड़े सर्दी के... यहाँ अपने सर्दी में यह करते हैं, अमुक करते हैं। उन्हें कुछ है नहीं। त्याग करनेवाले का भाव क्या है और त्याग किसे कहना, उसे नहीं समझते। उसको कहे, आहाहा! मुनि हो, साधु हो और आत्मा का चारित्र महादुःखदायक, बापू! वह दूध के दाँत से लोहे के चने चबाना। दुःख, दुःख माने। चारित्र जो आनन्द है, उसे दुःख मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। यह छहढाला में आता है। सात तत्त्व की भूल आती है न छहढाला में? तो सात तत्त्व की भूल में यह

आता है कि जो प्राणी संवर को दु:खदायक माने, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे संवरतत्त्व की खबर नहीं है। छहढाला में आता है। यहाँ लड़कों को सिखाते हैं।

यहाँ कहते हैं कि भगवान! मोक्ष का मार्ग आनन्दरूप है। वह कहता है, भाई! मार्ग में कितने काँटे आते हैं, कितने परीषह सहन करना पड़ते हैं, कितने उपसर्ग सहन करना पड़ते हैं। शरीर में रोग आवे। तो क्या हुआ? वह तो जड़ की दशा है। वह चारित्र और सम्यग्दर्शन-ज्ञान दु:खदायक होगा? दु:खदायक तो संसार है। जो मोक्ष का मार्ग है, उसे दु:खदायक माना। वह तो संसार माना। संसार माना। तब संसार सुखदायक है, ऐसा उसका अर्थ हुआ। भाई! उसका अर्थ ऐसा हुआ न कि संसार का मार्ग सुखदायक, सुविधावाला और मोक्ष का मार्ग दु:खदायक। देखो, विपरीतता। अभी मार्ग की बात की भी खबर नहीं। मुनियों को कितने कष्ट होते हैं, जंगल में रहना-वन में रहना, अकेले रहना, उन्हें खाने-पीने का (ठिकाना नहीं)। बापू! यहाँ तो पूड़ी तैयार। पूड़ी बनाना, अमुक बनाना। वहाँ उन्हें मिले? बापू! ऐसा करके हम सुखी हैं। वे बेचारे दु:खी हैं। उसने धर्म की बात सुनी नहीं। आत्मा अतीन्द्रिय कन्द अमृत का भगवान भण्डार, उसके अवलम्बन से प्रगट हुई श्रद्धा, ज्ञान और चारित्रदशा, वह तो परम आनन्द, परम आधार परम उत्साह का काल है। उसे जो दु:खदायक मानता है, उसे तो चारित्र-दर्शन-ज्ञान तीनों की खबर नहीं है। खबर नहीं है। कहो, समझ में आया?

वही परमानन्द है,.... सर्वत्र परमानन्द शब्द प्रयोग किया है। परम आनन्द, ऐसा। समझ में आया? मोक्ष का मार्ग। है न? अन्दर में है। **वही परमानन्द है,....** शान्ति— अकषाय अंश और पूर्ण अकषाय के कारणरूप भाव, वह कषायभाव होगा? पूर्ण आनन्द का पूर्ण.... उसके कारणरूप भाव, वह दु:खभाव होगा? या पूर्ण आनन्दरूपी मोक्ष के कारणरूप भी आनन्दभाव होगा? थोड़ा आनन्द पूर्ण आनन्द का कारण। परन्तु दु:ख है, उसे आनन्द का कारण (मानता है), वह वस्तु को नहीं समझता। ओहोहो! धर्म, वह क्या चीज़ है!

जगत ने उल्टा चलाया है। जगत ने। ऐसा उल्टा चलाया, भारी चलाया। छोटाभाई! ....बोला, ऐसा कहते हैं। परन्तु उसे खबर नहीं होती कि मार्ग क्या है। सुननेवाले को

खबर नहीं होती। सुना ही नहीं मार्ग। मार्ग, वह परमानन्दस्वरूप अखण्ड प्रभु चिदानन्द के अमृत में से अमृत की वेलडी का प्रवाह चले, उसे दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीन को कहते हैं। यह उसे परमानन्द कहते हैं। मोक्षमार्ग में जरा भी दु:ख है नहीं। जरा भी कष्ट नहीं। समूल कष्ट का अभाव, ऐसा आनन्द है। उसे भगवान मोक्ष का मार्ग कहते हैं। ज्ञानचन्दजी! बापू! परमानन्द, वह मोक्ष का मार्ग है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... यह मानता है तो संवर की भूल है, मिथ्यात्व है।

चारित्र। ओहोहो! आनन्द का रस। चारित्र, वह आनन्द की अन्दर शक्ति में से जमीन फटकर आनन्द बाहर आवे, ऐसा चारित्र का स्वरूप है, उसे लोगों ने दु:खदायक कल्पित किया है। हवा से थैली भरना सरल परन्तु चारित्र मुश्किल, ऐसा कहकर चारित्र को दु:खदायक मान लिया है। अज्ञानियों ने चारित्र को दु:खदायक (मान लिया)। बेचारे बाहर से सहन करे... आहाहा! कुछ करते हो। वह धूल भी चारित्र नहीं उसमें। नग्न तो सब रहते हैं। आत्मा...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं और यह बनाते हैं। साधु बनाते हैं। बनावे तो होता है। वह तो अन्तर में से वस्तु की दृष्टि करे, निमित्त है संयोगी चीज़ है, उसकी रुचि छोड़े। राग हो उसकी रुचि छोड़े। वर्तमान पर्याय में अटके नहीं और स्वभाववान, पर्यायवान द्रव्य की रुचि, प्रतीति और प्रवृत्ति करे, उसमें परम आनन्द है। मोक्ष का मार्ग कहो या परम आनन्द कहो। दोनों में जरा भी अन्तर नहीं है। जरा भी अन्तर नहीं है। समकित कहो या परम आनन्द कहो, ज्ञान कहो या परमानन्द कहो, चारित्र कहो या परमानन्द कहो। तीनों में कुछ अन्तर नहीं। कहो, विरजीभाई! कठिन बात है जगत को।

यह एक समय में ऐसे प्रभु चिदानन्द स्थित है। एक समय की परिणति तो सब भव्य-अभव्य, जड़ की सबकी ही बहती है। परन्तु एक समय की परिणति को अन्तर्मुख झुकाना और पर्याय, राग और निमित्त की रुचि छोड़ना, ऐसी जो स्वभाव में से जो दशा... लो, और विशेष आया। मोक्षमार्ग में किसी समय आनन्द और किसी समय कुछ

खेद आता होगा या नहीं? नित्यानन्द। चौबीस घण्टे सन्तों को आनन्द। यह छठवें गुणस्थान की दशा का वर्णन चलता है। मुख्यरूप से चारित्रसहित की बात है न। ....दर्शन-ज्ञान और चारित्र।

मुनि... परन्तु ऐसे काल में तो कुछ होगा या नहीं फेरफार? यह जंगल में हो, बड़ा दम का रोग उठा हो, श्वास का... हो, कफ का.... उठा, यह वह दायें-बायें शूल उठा हो। एक ओर भालू ऐसे खाये और एक ओर भालू ऐसे खाता हो। बारह घण्टे तक तो.... ओहोहो! एक ओर ऐसे खाय तथा एक ओर ऐसे खाये। वहाँ कहीं मोक्षमार्ग में खेद होगा? सहन करना उसमें? सहन किया वह दु:ख सही? वह सहन करना अर्थात् कि आनन्द आना। आत्मा के अवलम्बन से अन्तर अमृत की वृत्ति का वहन होना और आनन्द के विशेष अनुभव का वेदन होना, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं।

यहाँ तो इससे पहले साधारण बात की, पश्चात् नित्य आनन्द है। चौबीस घण्टे। बड़े काँटे लगे हों पैर में। समझ में आया? ऐसे सर्प बड़े फणधर। ध्यान में हो, जंगल में हो। उसे डस गया हो और जहर चढ़ा। कहते हैं, नित्यानन्द है। उस समय भी आनन्द में मुनि डोलते हैं। वस्तु जो द्रव्यस्वभाव चिदानन्द के अवलम्बन से दर्शन-ज्ञान और चारित्र प्रगट हुआ, उसमें जरा भी आंशिक खेद नहीं। इन तीन में जरा भी दु:ख नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र में जरा भी आकुलता नहीं और जरा भी कष्ट जिसे हो तो वह मोक्षमार्ग में नहीं है। ऐसे मोक्षमार्ग को नित्यानन्दस्वरूप कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? इसका नाम मार्ग। इसके अतिरिक्त लोग मार्ग कहे, उनकी दृष्टि खोटी, ज्ञान भी खोटा और सब खोटा खोटा। रण में शोर मचाने जैसा है।

वही सहजानन्द है,... और वापस इसकी व्याख्या की अब। आनन्द के दो बोल रखकर कि कैसा आनन्द है वह? स्वभाव से उत्पन्न हुआ आनन्द है। कोई राग के समाधान से, कोई विकल्प और पुण्य के समाधान से उत्पन्न हुआ आनन्द नहीं है। अथवा आज जरा प्रतिकूलता परन्तु अभी आनन्द बढ़ेगा। कल साता हो जायेगी। ऐसे राग के समाधान से आनन्द होगा? ऐसा लोग लेते हैं न भाई! ....बापू! कल वापस अभी.... लोग नहीं कहते, लड़का मर जाये तब? कि एक लड़का है। एक के इक्कीस

(होंगे)। बाल और चार दुष्काल, इसी प्रकार अज्ञानी जीव विश्राम लेता हुआ विकार का आनन्द लेता है, वह स्वभाव से उत्पन्न हुआ आनन्द नहीं है। ऐसा कि मुनि को परीषह तो क्षणिक में आवे। दो घड़ी.... सदा ही हो? ऐसे जो विकल्प उठे, उसका समाधान करना है? आत्मा के अवलम्बन से जो आनन्द स्वभाव से उत्पन्न हुआ, उसके अवलम्बन से ही स्वभाव का था। उसे राग और मन के चित्त के संग का अवलम्बन नहीं था। ऐसा जो आनन्द, उसे स्वभाव से उत्पन्न हुआ आनन्द कहते हैं। स्वभाव से उत्पन्न हुआ आनन्द कहो या सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहो या मोक्ष का मार्ग कहो। तीनों यह चीज़ है। समझ में आया?

वही स्वभाव से उत्पन्न हुआ आनन्द है। पश्चात् **वही सहजानन्द है।** ...नित्यानन्द लिया। है न? **वह सहजानन्द है,....** सहजानन्द वह... है। सहजानन्द है और.... सदानन्द है। वापस दूसरा बोल लिया। समझ में आया? सहजानन्द ऐसा शब्द। नित्यानन्द है ऊपर। नित्यानन्द ऊपर वह सहजानन्द के लिये.... सदानन्द है। वह मोक्ष का मार्ग सदानन्द है। ....नित्य को ....सदानन्द। कहो, समझ में आया? सदानन्दी। यह मोक्षमार्ग सदानन्दी है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम तो बहुत सब आते हैं। नित्यानन्द और सदानन्द पर्याय नाम है। पहली बात आ गयी। सदानन्दी। लोग कहते हैं न? ...हसमुख हो न मनुष्य? तो लोग कहे, सदा ही बस.... वह तो जड़ का हर्ष है। वह कहीं आत्मा का हर्ष नहीं। वह तो सब दु:खदायक है। आत्मा में से मोक्ष का मार्ग प्रगट हुआ, उसकी निर्मल पर्याय वीतराग स्वभाव के अवलम्बन से प्रगट हुई, वह सदानन्दी है। उसका नाम सदानन्द कहा जाता है।

३२। **वही शुद्धात्मपदार्थ का अध्ययनरूप है,....** लो! कहते हैं कि वह मोक्षमार्ग और शुद्ध आत्मपदार्थ के पठनरूप स्वरूप का धारक। यह इसने आत्मा का पठन किया। समझ में आया? शुद्धात्मपदार्थ अध्ययनरूप। उसने पदार्थ का, आत्मपदार्थ का अध्ययन किया। समझ में आया? यह शास्त्र अध्ययन, उसे सत् गुरु, उसका तो उसमें विकल्प

और शुभराग है। वह शुभराग कहीं आत्मपदार्थ का अध्ययन नहीं है। लो, अध्ययन किया अध्ययन। किसका अध्ययन किया? शुद्ध आत्मपदार्थ का पठन अध्ययनरूप स्वरूप का कारण। ऐसे आत्मपदार्थ का अध्ययन किया। बारम्बार फिराया आत्मा को। वह अध्ययन करते हैं न कि इतने श्लोक बोले। इतने श्लोक का स्वाध्याय करूँगा। कहते हैं कि इस आत्मा का स्वभाव प्रगट हुआ और मोक्षमार्ग हुआ, वह आत्मा का स्वाध्याय है अथवा वह अध्ययन है। उसे यहाँ अध्ययन कहा जाता है। बाकी शास्त्र शब्द तो व्यवहार अध्ययन है। शास्त्र का पठन और शास्त्र का अध्ययन, वह तो व्यवहार अध्ययन है। समस्त बोल वहाँ डाले हैं। समझ में आया?

अब शास्त्र अध्ययन करना या नहीं? वह तो उसकी योग्यता हो तो शुभराग आता है। आये बिना रहता नहीं। परन्तु आत्मपदार्थ के अन्तर झुकाव की दशा बिना आत्मपदार्थ का अध्ययन नहीं हो सकता। समझ में आया? अध्ययन का.... शुद्धात्म पदार्थ अध्ययनरूप। वह शुद्ध आत्मपदार्थ के अध्ययन का वह रूप है। निश्चयमोक्षमार्ग, वह उसने आत्मा का अध्ययन किया। उसने आत्मपदार्थ का अध्ययन किया। बाकी अकेले शास्त्र के अध्याय या पर के आगम के अध्याय स्व शास्त्र का अध्याय, वह भी शुभभाव है। वह वास्तव में आत्मपदार्थ का अध्ययन नहीं है। कहो, समझ में आया? ३३ हुए।

वही परम स्वाध्याय है,.... वह अकेला अध्ययन डाला। समझ में आया? अब कहते हैं, वह परम स्वाध्याय है। लो, परमस्वाध्याय। वांचना, पृछना, पर्यटन, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा। वह सब आत्मपदार्थ वस्तु जो अखण्ड द्रव्य, उसके अवलम्बन से प्रगट हुई श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र को स्वाध्याय कहते हैं। वह वास्तविक परम स्वाध्याय है। सम्यग्दर्शन, वह स्वाध्याय; सम्यग्ज्ञान, वह स्वाध्याय; यह सम्यक्चारित्र, वह भी स्वाध्याय। यह शास्त्र की स्वाध्याय करना, वह तो शुभराग है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्व-अध्याय। स्वअध्याय। अपना अध्याय-पढ़ा। स्वयं स्व चिदानन्द आत्मा अनन्त गुण की खान, अनन्त गुण का सागर निधि, अकेले आनन्द का

पिण्ड, आनन्द से भरपूर। समयसार में आता है न? ज्ञान-दर्शन और चारित्र से भरपूर ही आत्मा है। उसे कहीं बाहर से लाना नहीं पड़ता। नमक की डली क्षार से भरपूर, खड़ी सफेदाई से भरपूर। भगवान ज्ञान और आनन्द आदि शक्ति से भरपूर ही है। उसका जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भाव, उसे स्वाध्याय कहते हैं। लो, निश्चयमोक्षमार्ग कहो या परम स्वाध्याय कहो। अभेद रत्नत्रय कहो या परम स्वाध्याय कहो। समझ में आया इसमें? ...क्षेत्र में रहता नहीं। कहो, कन्हैयालालजी! वही निश्चय मोक्ष का उपाय है। वह कारण कहा था न? भाई! मोक्ष का मार्ग। मार्ग कहो या उपाय कहो। एक निश्चय मोक्ष का उपाय है। सच्चा मोक्ष का उपाय वह यह। तीन दशा जो तीन प्रकार के अंश प्रगट हुए और परमानन्द का जो अनुभव हुआ, वही सच्चा मोक्ष का उपाय है। वह उपेय अर्थात् सिद्ध का उपाय तो यही है। उपेय सिद्ध, फल सिद्ध। उसका उपाय यह—मोक्ष का उपाय तो यही है, दूसरा कोई है नहीं।

वही एकाग्रचिन्तानिरोध है,.... लो, ध्यान की व्याख्या। ३६-३६। **वही एकाग्रचिन्तानिरोध है,....** किस प्रकार? कि सम्यग्दर्शन में आत्मा के ओर की एकाग्रता होने पर मिथ्यात्व का निरोध हो जाता है। आत्मा की ओर का सम्यग्ज्ञान होने पर मिथ्याज्ञान का निरोध हो जाता है। अटक जाता है। स्वभाव सन्मुख की स्थिरता होने पर अस्थिरता का निरोध हो जाता है। इसलिए मोक्षमार्ग को एकाग्रचिन्तानिरोध कहते हैं। एकाग्रचिन्तानिरोध कहो या सच्चा मोक्ष का मार्ग कहो या आत्मा में सुखरूप में संयम होना और उसे.... कहो। यह सब मोक्षमार्ग की पर्याय के नाम हैं।

अब यह तो सब निश्चय की बात, अब लोग ऐसा कहते हैं। परन्तु वापस इसके कारण, व्यवहार कारण, निमित्त कारण वह कोई चीज़ होगी या नहीं या सब उड़ा दी? यह समझे तो वह रही है। नहीं तो वह रही नहीं। यह समझे और प्रगटे तो सबको व्यवहार कहा जाता है राग को, निमित्त को निमित्त कहा जाता है। नहीं तो निमित्त और व्यवहार से कहीं यह दशा प्रगट नहीं होती। गजब! नहीं तो कहे, निश्चयाभास है, निश्चय है और यह है और यह है।

द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ जैसी ५८ गाथा, उसमें भी इतनी बात पूरे समयसार का मर्म भर

दिया है। यह तो एक गाथा में बात करे या लाख गाथा से बात करे या चौदह पूर्व में बात करे, यह तो मुनियों की बात एक में भी आ जाती है और पूरे में भी आ जाती है। ऐसी ही कोई पद्धति और रीति है। कहो, समझ में आया? **वही एकाग्रचिन्तानिरोध है,....** एक अग्र, एक मुख्य.... हुआ, एक मुख्यरूप से रहा। अध्यात्मदृष्टि में एक ही आत्मा जहाँ मुख्यरूप से रहा, वहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकाग्रता स्वभावसन्मुख हुई। और राग में एकाग्रता थी, राग में एकाग्रता से मान्यता मिथ्यात्व थी, राग में एकाग्रता की मान्यता से जो लाभ माना, वह मिथ्याज्ञान था, राग में एकाग्रता, वह अचारित्र था। राग में एकाग्र रहूँ तो लाभ होगा, यह मिथ्यात्व था, राग में एकाग्र होऊं तो ज्ञान होगा, यह मिथ्याज्ञान था, राग में एकाग्र (होना वह) मिथ्याचारित्र था। इस स्वभाव में एकाग्रता हुई। रागरहित आत्मा की अराग श्रद्धा-ज्ञान और रमणता (हुए), उसे एकाग्र चिन्ता का निरोध कहते हैं। एकाग्र चिन्ता का निरोध कहो या मोक्ष का मार्ग कहो। उसमें जरा भी अन्तर नहीं है।

वही परमज्ञान है,.... लो! **वही परमज्ञान है,....** वही दूसरे... वही परमतत्त्वज्ञान है, ऐसा आया था। शुद्धात्मज्ञान। समझ में आया? परमतत्त्वज्ञान। उसमें परमतत्त्वज्ञान आया था। यहाँ **वही परमज्ञान है,....** कहो, समझ में आया? वही परमबोध। बोध शब्द पड़ा है। वह मोक्ष का मार्ग अर्थात् परमबोध है। स्वभाव के अवलम्बन से प्रगट हुई अकषाय श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र को परमबोध कहते हैं। परमबोध। शास्त्र का बोध, वह परमबोध नहीं। आत्मबोध पाया, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। उसे परमज्ञान कहते हैं। बोध कहते हैं न? भाई! कोई बोधिबीज नहीं कहते? बोधि में तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र की तीनों की प्राप्ति। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि इन तीनों को हम बोध ही कहते हैं। आत्मा के अवलम्बन से दर्शन-ज्ञान और चारित्र प्रगट हुआ, उसे परमबोध कहते हैं। मोक्षमार्ग कहो या परमबोध कहो। श्रीमद् में लिया है न वह? 'कर्म मोहनीय भेद दो दर्शन-चारित्र नाम, हणे बोध वीतरागता...' दर्शनमोह को बोध नष्ट करता है। सम्यग्ज्ञान से दर्शनमोह घात होता है। वीतरागता से चारित्र (मोह का) घात होता है। नष्ट हो जाये अर्थात् चारित्रमोह का नाश

होता है। वीतरागभाव से चारित्रमोह का नाश होता है। बोध द्वारा मिथ्यादर्शन का नाश होता है। यहाँ कहते हैं कि तीनों को हम परमबोध कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की तीन पर्याय, तीन पर्याय का एक मार्ग, उसे परमबोध शब्द से कहते हैं।

वही शुद्धोपयोग है,.... लो! जो परमज्ञान कहा था, उन तीनों को शुद्धोपयोग कहा। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्‌चारित्र जो निर्विकल्प, उसे शुद्धोपयोग कहते हैं। भाई! मोक्ष का मार्ग, वह शुद्धोपयोग। यह पुण्यपरिणाम आदि मार्ग, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। ऐसा इसका अर्थ हुआ। सब बन्ध का मार्ग है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठे, वह बन्ध का मार्ग है। वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं। आत्मा के अवलम्बन से जो दशा प्रगट हुई, उसे शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग कहते हैं। लो!

परमानन्द कहो, शुद्धोपयोग कहो या सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहो। वे सब एक अर्थ में जाते हैं। शुद्धोपयोग ही मोक्ष का कारण है। दूसरा कोई कारण जरा भी नहीं। दया, दान, भक्ति, व्यवहाररत्नत्रय शुद्धोपयोग नहीं है। वह शुद्धोपयोग व्यवहाररत्नत्रय से नहीं होता। वह शुद्धोपयोग आत्म द्रव्य के अवलम्बन से होता है। ऐसे आगम—शास्त्र, गुरु और देव कहते है, वह व्यवहार सच्चा अर्थात् निश्चय सच्चा। वह व्यवहार सच्चा और निश्चय सच्चा। है दोनों, परन्तु मोक्षमार्ग तो इसे ही कहा जाता है। मुनियों को शुभोपयोगी मुनि कहा है और शुद्धोपयोगी भी मुनि प्रवचनसार में कहा है। परन्तु शुभोपयोगी को व्यवहाररूप से और इन्हें यथार्थ निश्चयरूप से कहा है कि शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है। दूसरा कोई कारण नहीं। .... बोल हुए।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोंध - प्रवचन नं. ३ में आवाज अस्पष्ट होने से छोड़ दिया गया है।

मागसर शुक्ल १३, शनिवार, दिनांक - २९-११-१९५२, गाथा - ५६, प्रवचन - ४

५६वीं गाथा, उसकी टीका में मोक्षमार्ग का विस्तार है। मोक्ष अर्थात् आत्मा की परम शुद्ध निर्मल आनन्ददशा। उसके कारणरूप मार्ग को कितने नाम से कहा जाता है, उसका यह अधिकार है। देखो! ४५ नाम आ गये हैं। वास्तव में तो आत्मा को—द्रव्य के अवलम्बन से जो श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र हो, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया? द्रव्य अर्थात् इस नख से शिखा तक ज्ञान से व्याप्त अवगाहनस्वरूप, उसका धारक जो आत्मा, नख से शिखा तक जो ज्ञान के अवगाहन से व्याप्त पदार्थ ऐसा जो आत्मा, ऐसा जो द्रव्य, उसके आश्रय से प्रगट हुई सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान और चारित्रदशा। यह शरीर, वाणी, मन विकल्प आदि वर्तमान पर्याय के आश्रय से प्रगट हुई बात नहीं। अखण्ड ज्ञान अवगाहकर जो पूरे शरीर में भिन्न तत्त्व रीति से वस्तु स्वभाव है, उस स्वभाव के अन्तर्मुख होकर दृष्टि, ज्ञान और वीतरागता का चारित्ररूप दशा हुई सच्चा मोक्षमार्ग कहते हैं।

वही अभेदरत्नत्रयस्वरूप है,.... आज बोल ४६वाँ बोल यह आया है। यह निश्चय अर्थात् सच्चा मोक्षमार्ग कहो या अभेदरत्नत्रय स्वरूप कहो। भेदरत्नत्रय अर्थात् सच्चे देव-गुरु और शास्त्र की श्रद्धा, ज्ञान और राग की मन्दता के भाव को भेदरत्नत्रय कहते हैं। उसे व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं। कि जो आस्रवरूप है और स्वभाव शुद्ध के अवलम्बन से जो प्रगटे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसे अभेद रत्नत्रय कहते हैं। क्योंकि द्रव्य के अवलम्बन से प्रगट हुई पर्याय द्रव्य में अभेद होती है। कहो, समझ में आया?

शरीर, वाणी, मन, कर्म के अवलम्बन से नहीं। देव-गुरु-शास्त्र जो सत्य बात कहते हैं, उनके लक्ष्य से हुआ राग, उसकी मान्यता, ज्ञान और राग की मन्दतारूप भक्ति वह तो व्यवहाररत्नत्रय विकल्प और पुण्यास्रव है। उससे रहित आत्मा के अन्तर्मुख दृष्टि होकर वीतरागता श्रद्धा, ज्ञान और रमणता प्रगट हो, उस वस्तु के साथ पर्याय अभेद

होती है, इसलिए उसे अभेदरत्नत्रयरूप कहते हैं। वह अभेदरत्नत्रयरूप, वही मोक्ष का मार्ग है। दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग नहीं। उस राग को-विकल्प को उपचार भले आवे, होता है परन्तु यथार्थ अभेदरत्नत्रय, वही मोक्ष का मार्ग और पन्थ है। अब ४६। अभेदरत्नत्रय मोक्ष का मार्ग अर्थात् कि भेदरत्नत्रय मोक्ष का मार्ग नहीं, ऐसा सब अर्थ में इसमें आ जाता है।

४७वाँ। **वही वीतराग सामायिक है,....** ४७वाँ बोल। मोक्षमार्ग कहो या वीतराग सामायिक कहो। विकल्प जो शुभ उठे कि नवकार गिनूँ, पाठ पढ़ूँ, वह तो शुभराग है। वह कहीं वास्तविक सामायिक नहीं। वास्तविक सामायिक समता चिदानन्द के अवलम्बन से जो अनाकुल समता अन्तर में प्रगट हो, आनन्द के साथ गुँथी हुई समता, स्वभाव के अन्तर्मुख होकर अमृत के स्वाद के साथ गुँथी हुई समता, ऐसी जो वीतराग सामायिक उसे निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया? देखो न, कितने प्रकार से स्पष्ट किया है! राग सामायिक तो लोग मानते हैं, वह नहीं। विकल्प उठता है—शुभपरिणाम के भाव, वह सामायिक, वह मोक्षमार्ग नहीं, वह सामायिक नहीं। वीतराग सामायिक। वस्तु ही स्वयं वीतरागी परमस्वभाव पारिणामिक तत्त्व जो चिदानन्द कारण भगवान, कारणपरमात्मा, शक्ति का कन्द उसके अवलम्बन से प्रगट हुई वीतरागी—रागरहित समता और आनन्द, उसे वीतराग सामायिक कहते हैं। वह सामायिक सच्ची। ....भाई! कठिन बात, भाई! वह सामायिक सच्ची और उसे सच्चा मोक्ष का मार्ग कहते हैं। बात है यह सर्वज्ञ, सन्त और शास्त्र बात तो यह सब करते हैं। परन्तु बीच में उसे श्रवण करते हुए, उसे प्रतीति करते हुए जो राग आवे, वह राग वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं है। इसलिए यहाँ बतलाते हैं कि तू हमारा श्रवण करता है, सत्य देव, सत्य गुरु और सत् शास्त्र तथा कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का निषेध जो तुझे राग अशुभ का वर्तता है, परन्तु वह शुभराग स्वयं सामायिक नहीं है।

मुमुक्षु : ....भाव सामायिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भाव सामायिक यह है। परन्तु वह भाव सामायिक हो, उसे उस रागवाली को द्रव्य सामायिक कहा जाता है। फिर और द्रव्य सामायिक

सम्यग्दर्शन बिनावाले को कहा जाता है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? कन्हैयालालजी! वीतराग सामायिक। अहो! जिसमें पुण्य और पाप के दो परिणाम बन्धरूप है, बन्धरूप है और दोनों से जो वीतरागता प्रगटी है, वैराग्य, वैराग्य। अर्थात् पुण्य-पाप के विकार और राग से वैराग्यता हुई है। और स्वभाव के अस्तित्व की ओर झुका हुआ वीर्य है, ऐसी अन्तर की रागरहित वीतरागदशा को भगवान सच्ची सामायिक कहते हैं। यह सामायिक, सच्चा मोक्ष का मार्ग है। इसे मोक्ष के कारणरूप दशा कहते हैं। कहो, यह ४७ (हुआ)।

वही परम शरण-उत्तम-मंगल है,.... लो! ४८वाँ बोल। तीनों होकर इकट्ठा डाला है। लोग नहीं कहते? मांगलिक, उत्तम और शरण। इस जगत में शरण कौन शरण? कि यह आत्मा अखण्डानन्द अभेदस्वरूप के अवलम्बन से जो दृष्टि, ज्ञान और चारित्र का अंश प्रगट हुआ, वही शरण है। दूसरा शरण नहीं। अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहु शरणं, केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं। यह चार जो शरण कहे, वे कहीं शरण नहीं देते। उनकी ओर का लक्ष्य करके विचार करना, वह रागरूप शुभभाव है। वह व्यवहार शरण है। वास्तव में शरण चिदानन्द आत्मा वस्तु के अवलम्बन से जो निर्विकल्प रागरहित श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति का अंश प्रगट हुआ, वह आत्मा को शरण है। वह शरण है। दूसरा कोई शरण है नहीं। समझ में आया? देखो! यहाँ लोग तो ऐसा कहते हैं, अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहु शरणं, केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं। परन्तु वह तो परवस्तु है। और केवलीपण्ण्णत्तो धम्मो शरणं कहो तो वह तो आत्मा की वीतरागदशा है। अरिहंता, सिद्धा और साहु वह तो परचीज़ है। और केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं, वह तो केवली ने यह प्ररूपित किया कि रागरहित, पुण्यरहित, व्यवहाररत्नत्रयरहित चिदानन्द के अवलम्बन से जो दशा प्रगट हो, उसे हम शरण कहते हैं। बाकी कोई शरण है नहीं। भाई! लो! अरिहन्त, सिद्ध और साधु, ऐसा कहते हैं। कहते हैं कि भाई! हमको तू शरण कहता है, परन्तु तेरी दशा की ओर तुझे शरण है। तेरे स्वभाव सन्मुख से प्रगट हुई दशा, वह तुझे शरण है। उसे हम मोक्षमार्ग कहते हैं। कहो, समझ में आया?

ऐसे तो बहुत बोल जाये। अरिहन्ता उत्तम। आता है न? अरिहन्त उत्तम हैं, सिद्ध

उत्तम हैं, साधु उत्तम हैं, केवली का प्ररूपित धर्म, वह उत्तम है। वह क्या उत्तम? वह अरिहन्त, सिद्ध, साधु कुछ उत्तमपना यहाँ देने नहीं देते। केवली ने प्ररूपित धर्म, वह उत्तम है। आता है न लोगुत्तमा? अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलीपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। लोक में चार उत्तम हैं। यहाँ कहते हैं कि उन चार की ओर का विकल्प और वृत्ति उठे, वह राग है। वह उत्तम नहीं है।

उत्तम तो तेरा चिद्घन, चिद्घन ऐसा देह-देवल में ज्ञान का घन व्यापकर पड़ा हुआ पदार्थ, वह पूरा रजकण-रजकण से भिन्न और चिदानन्द ज्ञान से व्याप्त, ज्ञान से पसरा हुआ आनन्द के मौज से अन्दर पूरी शक्ति में आनन्द से व्याप्त पदार्थ। ऐसा जो तत्त्व उसकी शरण में राग-द्वेषरहित दशा श्रद्धा-ज्ञान प्रगट हुआ, उसे हम उत्तम कहते हैं। लो, यह तो उत्तम फिर निकाल दिया कि उत्तम अमुक है और उत्तम अमुक है। कहो, समझ में आया? यह केवलीपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। लोक में उत्तम है। परन्तु वह धर्म कौन सा? धर्म कहो, मोक्ष का मार्ग कहो, राग और पुण्य तथा व्यवहाररहित आत्मा की वीतरागी दशा कहो, वही लोक में उत्तम है। उस निश्चयमोक्षमार्ग को भगवान उत्तम कहते हैं।

मंगलं। जो यहाँ मंगल कहते हैं न? अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहु मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं। अथवा मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं। यह मंगल क्या चीज़ है? इस आत्मा के अवलम्बन से जो रागरहित वीतरागी दशा हुई, वह मंगल है। बाकी सब तो विकल्प शुभभावरूप मांगलिक कहलाते हैं। तेरे लिए मंगल। मम् अर्थात् पाप और गल अर्थात् गाले। अथवा मंग अर्थात् पवित्रता और ल अर्थात् प्राप्त करावे। पवित्रता को प्राप्त करावे और अपवित्रता को गलाये, ऐसा जो आत्मा के स्वभाव के अवलम्बन से वीतरागी दशा प्रगट हुई, वह पवित्रता को प्राप्त हुआ और उसने अपवित्रता का व्यय—नाश किया। ऐसा चिदानन्द आत्मा ध्रुव, ज्ञान की शक्ति, आनन्द की शक्ति, वीर्य की मूर्ति ऐसे ध्रुवस्वभाव के अवलम्बन से जो दशा प्रगट हुई, उस दशा को भगवान मंगल कहते हैं। वह संसाररूपी अमांगलिक का नाश करनेवाला है। कहो, समझ में आया?

यह तीनों में ऐसा लेना (कि) संसार अशरण है। संसार शब्द से पुण्य और पाप दोनों अशरण है, अनुत्तम है, अमंगल है। संसार अर्थात् पुण्य-पाप के परिणाम। वह व्यवहाररत्नत्रय का राग सच्चा, वह भी संसार—उदयभाव है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की प्रतीति करना, शास्त्र की ओर का झुकाव करके ज्ञान करना विकल्पसहित, रागसहित और पंच महाव्रत तथा बारह व्रत आदि के विकल्प, वे भी उदयभावरूपी संसार है। वह संसार शरण नहीं है, मांगलिक नहीं है, उत्तम नहीं है। समझ में आया? ....भाई! लो, यह संसार! कहाँ संसार रहता होगा?

आत्मा की पर्याय में जो उदयरूप विकारभाव होता है, वह सब संसार। फिर सत्देव, सत्गुरु और सत्शास्त्र, वह और करुणादि बुद्धि का, दानादि का शुभभाव, वह सब संसार है। वह शरण नहीं, वह उत्तम नहीं, वह मांगलिक नहीं। ज्ञानानन्द भगवान के अवलम्बन से प्रगट हुई पुण्य और व्यवहाररत्नत्रय रहित श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का अंश वह उत्तम है, वह शरण है, वह मांगलिक है। गजब बात भाई फेरफार! जगत तो बाहर से सब मानकर बैठ गया है। यहाँ भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा देवाधिदेव की वाणी में मोक्ष का मार्ग ऐसा आया है। दूसरा कोई मोक्षमार्ग है नहीं।

अब ४८वाँ बोल।

****

यह प्रवचन 12 मिनिट 48 सेकेण्ड का ही उपलब्ध है।
—अनुवादक

मागसर शुक्ल १४, रविवार, दिनांक - ३०-११-१९५२, गाथा - ५६, प्रवचन - ५

यह द्रव्यसंग्रह की ५६वीं गाथा है। उसके २०६ पृष्ठ पर। देखो! यह मोक्षमार्ग की पर्याय के नाम हैं। मोक्षमार्ग अर्थात् कि यहाँ '**इणमेव परं हवे ज्झाणं**' इस चौथे टुकड़े की यह सब व्याख्या चलती है। मोक्षमार्ग, वह ध्यान है। ध्यान अर्थात् एकाग्रता। एकाग्रता अर्थात् आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति है। ऐसे स्वभाव सन्मुख की दृष्टि ज्ञान और रमणता को ध्यान कहते हैं। और वह ध्यान मुक्ति का कारण है। चौथा पद है न? उसकी यह सब व्याख्या है। '**इणमेव परं हवे ज्झाणं**' समझ में आया?

आत्मा में परमध्यान उत्कृष्ट। '**हवे**' अर्थात् होता है। वह ध्यान मुक्ति अर्थात् परम आनन्द की दशा का कारण है। वह परमानन्द की दशा पूर्ण, उसे मुक्ति कहते हैं और उसके उपाय को—कारण को मोक्ष का मार्ग कहते हैं। उस मोक्ष के मार्ग की पर्याय के विशेष नाम और अनेकार्थ एक अर्थ है। नाम अनेक हैं परन्तु उसका अर्थ तो परमार्थ से एक है कि मोक्ष का मार्ग शुद्ध चिदानन्द आत्मा निमित्तों की रुचि छोड़कर, पुण्य-पाप के विकल्प और राग की रुचि छोड़कर और स्वभाव की ध्रुव सन्मुखता की अन्तर्मुख दृष्टि-ज्ञान और रमणता की, उसका नाम सच्चा मोक्ष के पंथ की राह है। उसके यहाँ ६४ नाम दिये हैं। उसमें यहाँ ५४वाँ नाम आ गया है।

वही दिव्यकला है,.... यह नाम कल आ गया। दिव्यकला। आत्मा ध्रुव चिदानन्द की अन्तर्मुख की वीतरागी दशा होना, उसे परम कला कहते हैं। समझ में आया? और उसे ही दिव्यकला कहते हैं। दिव्यकला कहो या परमध्यान कहो या मोक्ष का मार्ग कहो—सब एक है। देह-वाणी-मन, वह जड़ है। कर्म भी जड़-धूल है। आत्मा की वर्तमान पर्याय अर्थात् दशा में पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् उपाधिरूप भाव हो, वह विकार है। उसका आश्रय-रुचि छोड़कर स्वभाव की अन्तर्दृष्टि करके रमणता होना, वह दिव्यकला है। उस दिव्यकला द्वारा मुक्ति होती है। समझ में आया? इसके बिना मुक्ति नहीं होती। यह ५४वाँ बोल कल आया।

आज ५५वाँ। **वही परम अद्वैत है,....** वही परम अद्वैत है। क्या अद्वैत है? देखो!

शब्द आया। आत्मा अनन्त गुण का जो पिण्ड है। अब सामने देखो तुम्हारे से आयेगा। समझ में आया ? आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का जो स्वाभाविक पिण्ड है, उसकी रुचि, दृष्टि और रमणता का जो भाव, उसे यहाँ परम अद्वैत कहते हैं। समझ में आया ? परम अद्वैत अर्थात् यह सब होकर एक, ऐसा अद्वैत नहीं। समस्त आत्माएँ होकर एक हैं, सब गुण होकर एक हैं, सब जड़ादि द्रव्य होकर एक हैं, इसका नाम अद्वैत नहीं। अद्वैत तो उसका नाम है कि अनन्त गुण का पिण्ड, उसके ओर की एकता की प्रतीति, रमणता और ज्ञान, ऐसे स्वभाव की निर्दोष वीतरागी दशा को अद्वैत कहते हैं। समझ में आया ?

वही परम अद्वैत है। लोग अद्वैत कहते हैं न ? जगत में अद्वैत ही है। सब होकर इस जगत में एक ही है, दो है नहीं। ऐसा नहीं है। इसका नाम अद्वैत नहीं है। परन्तु आत्मा में राग की रुचि और ज्ञान तथा रमणता का अंश छूटकर, स्वभाव की एकताबुद्धि होकर अन्तर में श्रद्धा-ज्ञान और रमणता हो, ऐसी निर्विकल्प वीतरागी दशा को अद्वैत पन्थ कहते हैं। कहो, समझ में आया ? **वही परम अद्वैत है,...** दूसरा कोई अद्वैत इस जगत में नहीं है। सब होकर आत्मा एक, सब द्रव्य एक। एक आत्मा मुक्ति पावे तो दूसरे आत्मा में मिल जाये। फिर वहाँ सिद्ध में पृथक् न रहे, ऐसा अद्वैत नहीं है। ऐसा अद्वैत का स्वरूप नहीं है। अद्वैत अर्थात् चिदानन्द के अखण्डानन्द में एकता होकर भेद और द्वैतबुद्धि का भाव न रहना और स्वभाव में एकपने का भास होकर श्रद्धा-ज्ञान-रमणता करना, उसे परम अद्वैत कहते हैं। उसे निश्चयमोक्षमार्ग कहो या परम अद्वैत कहो या उसे परम आनन्द के अनुभव की दशा कहो। समझ में आया ? विकल्पादि होते हैं, निमित्तादि होते हैं, वह कहीं अद्वैत नहीं है। क्योंकि विकल्प जहाँ उठा, वह तो द्वैत हो गया। चिदानन्द की एकता स्वभाव में अखण्ड ध्रुव एक समय में अनन्त गुण का सदृश्य स्वभावी पदार्थ भगवान के ओर की एकता की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता तथा पर की पृथक्ता। स्वभाव सन्मुख की एकता और विकार तथा निमित्त की पृथक्ता, ऐसे स्वभाव की वीतरागी अवस्था को अद्वैत कहते हैं। और वह अद्वैत मोक्ष का मार्ग है, वह अद्वैत आत्मा के शान्ति का धर्मरूपी उपाय है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

वही परम अमृतरूप परम-धर्मध्यान है,.... लो! लोग कहते हैं न कि कुछ

धर्मध्यान करते हो? धर्मध्यान कहाँ रहता होगा? शरीर में? वस्त्र में? देह की क्रिया में? पुण्य-पाप के परिणाम हों उनमें? उसमें धर्मध्यान नहीं होता। समझ में आया? **वही परम अमृतरूप परम-धर्मध्यान है,....** कौन अमृतस्वरूप? आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द सहजानन्द, सदानन्द के ओर की दृष्टि की सन्मुखता करके ज्ञान और रमणता का अंश जो प्रगट हो, वही परम अमृतस्वरूप धर्मध्यान है। दूसरा धर्मध्यान कोई नहीं। राग हो दया, दान, भक्ति, व्रत का, वह धर्मध्यान नहीं। वह तो राग है। धर्मध्यान अर्थात् स्वभाव की अन्तर में ज्ञायक की अभेद दृष्टि होकर वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र का अंश प्रगट हो, वह परम अमृतस्वरूप है। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र जो मोक्ष का मार्ग, जो आत्मा के अवलम्बन से प्रगट हो, वह परम अमृतस्वरूप है। आनन्द का अनुभव है, वह धर्मध्यान है। उसे सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ धर्मध्यान कहते हैं। इसके अतिरिक्त धर्मध्यान कोई दूसरी चीज़ नहीं है। णमोकार गिनना, जाप करना इत्यादि-इत्यादि वह सब शुभभाव है, पुण्य परिणाम है। वह मुक्ति का मार्ग नहीं, वह मोक्ष का पन्थ नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भूमिका अर्थात् क्या? यही भूमिका एक ही है। प्राथमिक कहे किसे? इस ज्ञायक द्रव्यस्वभाव को पकड़कर परम अमृत की श्रद्धा-ज्ञान होना, वह प्राथमिक भूमिका। दूसरी कोई प्राथमिक भूमिका है नहीं। वह तो यह भान हुआ अमृत आनन्द ज्ञान का, तब प्रथम जो राग था, उसे व्यवहाररूप से अथवा वर्तमान राग वर्ते, उसे व्यवहाररूप का आरोप आता है। परन्तु उस स्वभाव का भान करे, तब आरोप आता है। पहले यह हो, फिर यह हो, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। समझ में आया?

वही परम अमृतरूप.... अ-मृत। आत्मा को मृत्यु ही नहीं होती, देह ही नहीं मिलती, देह छूटकर पूर्णानन्ददशा हो, उसका कारण परम अमृतस्वरूप धर्मध्यान है। अन्तर वस्तु को पहिचानकर नित्यानन्द की ओर में लीनता में लिपट जाना, एकाकार होना, राग का आश्रय न रहना और स्वभाव का आश्रय होकर लीन होना, उसे भगवान धर्मध्यान कहते हैं। गजब बात, भाई! कहो, समझ में आया? **वही परम अमृतरूप**

परम-धर्मध्यान है,.... परम धर्मध्यान। पश्चात् रागादि, विकल्पादि के विचारों को उपचार से धर्मध्यान कहते हैं। परन्तु वह अनारूप यह धर्मध्यान प्रगटे तो उसे उपचार से धर्मध्यान कहा जाता है। और वस्तुस्थिति तो यह है। रागादि कोई वस्तुस्थिति नहीं है। समझ में आया?

५७। **वही शुक्लध्यान है,....** लोग कहते हैं न कि शुक्लध्यान, वह क्या होगा? वह भी राग और पुण्य-पाप की लगनीरहित स्वभाव के अवलम्बन से होनेवाली वीतरागी सहजानन्द की दशा का अनुभव, उसका नाम शुक्लध्यान है। शुक्लध्यान कहो, मोक्ष का कारण कहो, निश्चयमोक्षमार्ग कहो, वह सब आत्मा ध्रुव एक समय का तत्त्व कारण भगवान कारणपरमात्मा के अवलम्बन से प्रगट हुई दशा को ही यहाँ शुक्लध्यान कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह देखो, गीत देखो मोक्षमार्ग के! इसके अतिरिक्त मोक्ष के.... मोक्ष तो परम शुद्धदशा है न।

मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पन्थ,
समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।

सर्वज्ञों ने-निर्ग्रन्थ सन्तों ने संक्षिप्त में जो पूर्ण शुद्धदशारूप मोक्ष का पन्थ बतलाया, वह यह है। दूसरा कोई है नहीं। समझ में आया? **वही शुक्लध्यान है,....** यह ५७वाँ बोल हुआ।

शुक्लध्यान कहो, निश्चयमोक्षमार्ग कहो, एकदेश शुद्ध निश्चय के विषय की वीतरागी दशा कहो। सब एक की एक बात है। यह शुक्लध्यान, वही आत्मा के ओर की झुकी हुई उज्ज्वल दशा, शुक्लदशा, निर्मलदशा, मलिनतारहित स्वभाव के अवलम्बन से निर्मल अंश—वीतरागता हो, उसे शुक्लध्यान कहते हैं। कैसे प्रगटे? कि द्रव्य के अवलम्बन से—त्रिकाल वस्तु के अवलम्बन से। किसी (दूसरे के) अवलम्बन से दूसरे प्रकार से प्रगट नहीं होता।

वही रागादि विकल्परहित ध्यान है,.... ध्यान के ही बोल रखे हैं। मूल ध्यान शब्द है न? कहते हैं कि लोग कहते हैं कि यह ध्यान करते हैं। ऐसे ध्यान करते हैं। वह कौनसा ध्यान होगा? वह राग और पुण्य और व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की, सच्चे देव-

गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत के परिणाम का राग, उस रागरहित विकल्परहित आत्मा की निर्विकल्प जो आत्मा की दशा, उसे भगवान धर्मध्यान कहते हैं। धर्म और शुक्ल दो भेद किये। समुच्चय ध्यान कहा है। उसका नाम ध्यान है। दूसरा कोई ध्यान नहीं। ....ऐसा विचार करूँ। ऐसा विचार करना और ऐसा करना, चौबीस तीर्थंकर को चिन्तवन करना, आत्मा मानो ऊँचा किसी पर्वत पर बैठा हो, उसमें से मानो ॐध्वनि खिरती हो, उसे सुनना। यह सब विकल्प उठे, वह शुभभाव है, पुण्यभाव है। वह ध्यान नहीं। वह निश्चयमोक्षमार्ग नहीं, वह सत्य पन्थ नहीं। सत्य पन्थ तो सत् स्वरूप जो त्रिकाल, उसे अवलम्बन से प्रगट हुई रुचि, ज्ञान और रमणता को भगवान ध्यान कहते हैं, और वही मोक्ष का कारण है।

वही निष्कल ध्यान है,.... सब ध्यान के शब्द आये। **वही निष्कल ध्यान है,....** उसे शरीररहित का ध्यान कहते हैं। लो! निष्कल अर्थात् शरीररहित। शरीर होने पर भी अशरीरी। यह शरीर होने पर भी मैं अशरीरी, वाणी होने पर भी वाणी से पार। कार्मण -शरीर और तैजस तथा औदारिकशरीर होने पर भी मैं अलग-थलग। ऐसी आत्मा की अरुचि चिद्घन ज्ञानानन्द की रुचि, ज्ञान और रमणता को भगवान निष्कल ध्यान कहते हैं। शरीर होने पर भी अशरीरी ध्यान। लो, यह मोक्ष का मार्ग, यह धर्म। यह धर्म कहो या मोक्ष का मार्ग कहो। निष्कल ध्यान। शरीर में रहा होने पर भी अशरीरी ध्यान। कर्म के संयोग में रहा होने पर भी असंयोगी स्वभाव का ध्यान। समझ में आया?

निष्कल ध्यान। शरीर का ध्यान नहीं होता। तब (किसका ध्यान)? कि निष्कल। शरीररहित ध्यान। मैं शरीररहित हूँ। कार्मणशरीर के उदयरहित हूँ। मुझमें कार्मणशरीर तो नहीं परन्तु कार्मण के उदय का भाव—उदय भी नहीं और उदय के निमित्त के जुड़ान से होता विकार भी मुझमें नहीं। ऐसी आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह धर्म है। उसे त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव धर्म कहते हैं। और उस धर्म को निष्कल ध्यान कहते हैं। समझ में आया? तो अब शरीर में रहा शरीररहित का ध्यान, वाणी में रहा वाणी रहित का ध्यान, इस मन का संग रहा होने पर भी मनरहित का ध्यान। मन है, यहाँ आठ पंखुड़ी का जड़, हृदय में। यह वाणी निकलती है, वह जड़-मिट्टी और यह शरीर, ये तीन शरीर के अवयव कहलाते हैं। ये तीनों शरीर के अंग कहलाते हैं।

वाणी, यहाँ मन है जड़ और शरीर तथा श्वास। यह श्वास चलती है, वह सब शरीर के अंग हैं, शरीर के अवयव हैं, शरीर के अंश हैं। यह श्वास, मन, वाणी और देह—इनसे रहित होकर आत्मा का ध्यान और एकाग्रता करना, यह इसका नाम निष्कल ध्यान है। कहो, समझ में आया? कठिन बात, भाई! श्वास चले, वह शरीर का अवयव। उसके ऊपर लक्ष्य, वह ध्यान नहीं। चिदानन्द प्रभु श्वासरहित है। भगवान आत्मा श्वास की कला और श्वास की क्रियारहित है। यहाँ जड़ मन के संगरहित है, वाणी के स्पर्शरहित है और कार्मण और औदारिक और तैजसशरीर के अभावरूप है। ऐसे आत्मा की अन्तर श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता की वीतरागदशा को धर्म कहते हैं। उसे त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ वीतराग धर्म कहते हैं। और वह धर्म, मुक्ति का मार्ग है। इससे दूसरे प्रकार से धर्म कहते हों, वे मिथ्यादृष्टि हैं। वे धर्म को समझते नहीं। भाषा समझ में आती है? गुजराती है। थोड़ी-थोड़ी चले। परन्तु सब गुजराती में चलता है न यहाँ।

वह निष्कल ध्यान है,.... समझे न निष्कल ध्यान अर्थात् क्या? शरीररहित ध्यान होना, इसका नाम धर्म है। मैं शरीररहित हूँ, मैं वाणीरहित हूँ, मैं मनरहित हूँ, मैं पुण्य-पाप के विकार-रागरहित हूँ। ऐसा स्वभाव शुद्ध चिदानन्द है, उसकी दृष्टि, ज्ञान और एकाग्रता होना, उसे त्रिलोकनाथ भगवान ध्यान, धर्म कहते हैं। इसका नाम धर्म है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई धर्म नहीं है। समझ में आया? गजब भाई धर्म! धर्म कहीं शरीर से होता होगा? शरीर से धर्म होता है? वाणी से धर्म होता नहीं, पैसे से धर्म होता नहीं, शरीर से नहीं होता। यहाँ तो शरीर से नहीं होता। लोग तो कहते हैं कि भाई! वज्रकाय शरीर मिले न, वज्रकाय तो आत्मा को ध्यान होता है। यहाँ तो इनकार करते हैं। वज्रकायरहित निष्कल ध्यान। शरीर ही मेरा नहीं, परमाणु भी मेरे नहीं, विकार जो क्षणिक उत्पन्न होता है पर्याय में, वह भी मैं नहीं। मैं अखण्ड आनन्दकन्द शुद्ध हूँ, ऐसा जो आत्मा में रुचि होकर, ज्ञान होकर जम जाना, उसका नाम ध्यान है। उसका नाम धर्म है। उसका नाम निश्चयमोक्षमार्ग है। कहो, समझ में आया? वही निश्चयमोक्षमार्ग है।

वही निष्कल ध्यान है,.... लोग कहते हैं कि इस शरीर से पृथक् पड़कर ध्यान किस प्रकार करते होंगे? शरीर से—शरीर में रहना, पानी में रहना और पानी के साथ

मछली को बने नहीं। लोग कहते हैं न भाई ? नहीं कहते ? पानी में रहना और मगरमच्छ के साथ विरोध। इसी प्रकार शरीर में रहना और शरीररहित ध्यान करना। वाह ! भगवान ! शरीर तो जड़ है। वह तो मिट्टी है, पुद्गल है, अजीव है। वह आत्मा नहीं। आत्मा और शरीर तो भिन्न-भिन्न पदार्थ है। भिन्न-भिन्न पृथक्-पृथक् तत्त्व है। तो शरीर में रहना, यह कथन व्यवहार का है। शरीर में आत्मा रहा ही नहीं। यह तो निमित्त का कथन है। शरीररहित। अहो ! ज्ञानविग्रहं शरीरं। मेरा शरीर तो ज्ञानमूर्ति है, चैतन्यघन मेरा शरीर है। मैं तो ज्ञान व्यापक। नख से सिख। नख से सिर तक।

जो ज्ञान व्याप्त है, ज्ञान अवगाहनरूप होकर पसर है, ज्ञानस्वरूप जो चौड़ा होकर भासित होता है, उस स्वरूप का धारक, वही आत्मा है, वह ज्ञान ही है। राग नहीं, द्वेष नहीं, पुण्य नहीं, दया, दान विकल्प नहीं, वह तो राग है। शरीर में व्यापक होकर जो ज्ञानस्वरूप ज्ञायक जो चिदानन्द अखण्ड ज्ञायक जो स्वरूप ज्ञान अवगाहन, व्यापक होकर विस्तार होकर जो तिष्ठता है, वह ज्ञान का धारक स्वरूपवान, उस स्वरूप का स्वरूपवान मैं हूँ। उसकी दृष्टि करके एकाग्र होना, वह निष्कल ध्यान है। उसका नाम भगवान धर्म कहते हैं। उसका नाम भगवान सामायिक और प्रतिक्रमण कहते हैं। उसका नाम भगवान मोक्ष की आवश्यक क्रिया कहते हैं। मोक्ष के लिये होनेवाली आवश्यक क्रिया, इसका नाम मोक्ष की क्रिया है। बाकी जड़ की क्रिया, वह मोक्ष की (क्रिया) नहीं। पुण्य-पाप और दया, दान विकल्प उठे, वह पुण्य है। वह कहीं मोक्ष की क्रिया नहीं। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब निमित्त के कथन। शरीर आद्यं खलु धर्म साधनं। यह कितने ही वैद्यों ने घुसा डाला है। और या निमित्त का कथन। समझ में आया ? शास्त्र में भी ऐसा आता है। शरीर आद्यं खलु धर्म साधनं। यह साधन होगा धूल ? यह तो मिट्टी है, धूल है, परमाणु पुद्गल है।

इस आत्मा के इस भव पहले तो यह नहीं था। इस भव के बाद यह नहीं रहेगा। यह बीच में जो आया, उससे धर्मध्यान होगा ? गजब बात, भाई ! भगवान आत्मा तो

चिदानन्द नित्यानन्दस्वरूप अविनाशी है। आदि बिना, अन्त बिना, अभाव बिना, वर्तमान अभाव बिना, ऐसा पदार्थ, उसे इस शरीर का पहले अभाव था। इस भव पहले अभाव था। इस भव के पश्चात् अभाव होगा। वर्तमान में अभाव है। एक समय जिसका सम्बन्ध नहीं, उसमें तन्मयपना, वह त्रिकाल अभाव है। समझ में आया? वह एक समय भी आत्मा की पर्याय के अस्तित्व में शरीर है ही नहीं। पूर्व में नहीं था, भविष्य में नहीं रहेगा, अभी नहीं है। '...' जो पूर्व में नहीं था, भविष्य में नहीं रहेगा, वह वर्तमान में मेरा है-(ऐसा) तीन काल में नहीं है। समझ में आया?

इसलिए भगवान ग्रन्थकार परम ध्यान वह... नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने द्रव्यसंग्रह बनाया है। नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती। वे भगवान नेमिचन्द्र तो सन्त थे, मुनि थे। छठवें-सातवें गुणस्थान में झुलते भावलिंगी। जंगल में विचरते दिगम्बर मुनि थे। नग्न दिगम्बर सन्त सिंह थे। एक वस्त्र का धागा भी नहीं, एक पात्र का टुकड़ा नहीं। एक मोरपिच्छी और कमण्डल। वह भी जब विकल्प उठे, तब लक्ष्य जाये। बाकी स्वरूप के आननद में मस्त थे। ऐसे नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती इस ५६वीं गाथा में कहते हैं कि मुक्ति का मार्ग अनन्त सन्तों ने यह कहा है। '**परं हवे ज्झाण**' उत्कृष्ट जो आत्मा के ओर की लीनता, उसे ध्यान और मुक्ति का पन्थ कहा है। तब टीकाकार ने उसके ६४ बोल वर्णन किये। जिसे एक बोल में सिद्धान्त चक्रवर्ती ने कहा, टीकाकार ने उसके ६४ किये। समझ में आया? यह ६४ कला। समझ में आया?

यह सब नाम एक के चलते हैं। **वही निष्कल ध्यान है,...** लो, भाई! शरीर में रहे, शरीर के साथ सम्बन्ध नहीं। वाणी में रहे... परन्तु रहा ही कब है? तेरा स्वरूप तो तेरे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है। द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् अपनी चौड़ाई; काल अर्थात् वर्तमान अवस्था और भाव अर्थात् त्रिकाल शक्ति। अपने स्वचतुष्टय में अपना आत्मा है। परचतुष्टय में आत्मा है नहीं। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पर के चतुष्टय आत्मा में नहीं। तो कहते हैं, निष्कल ध्यान। परचतुष्टय का ध्यान छोड़कर इस स्व में एकाग्रता होना, ज्ञानानन्द में अमृत का उछाला आना, वह अमृत का उछाला-तरंग उठे तरंग—लहरें, वह आनन्द की अमृतरस की लहरें उठें अन्तर में से तरंग की पर्याय, उसे निष्कल ध्यान और धर्म कहते हैं। समझ में आया?

वही परम स्वास्थ्य है,.... लो! कहते हैं कि परम निरोगता। स्वास्थ्य। नहीं कहते? स्वास्थ्य (अच्छा) है? स्वास्थ्य। स्वास्थ्य शरीर में निरोगता में स्वास्थ्य कहाँ से आ गया? यह तो धूल की निरोगता है। समझ में आया? यह तो मिट्टी है। सुन्दर हो, रूपवान हो तो भी वह मिट्टी की पर्याय है। आत्मा की तो है नहीं। परम स्वास्थ्य। स्वास्थ्य—परम निरोगता, परम स्वास्थ्यता। वह राग और पुण्यरूपी रोग आत्मा की पर्याय अर्थात् दशा में पुण्य-पापरूपी राग होता है, वह रोग है। राग, वह रोग है। वह आत्मा निरोग चिदानन्द आनन्दकन्द ध्रुव शक्ति का भण्डार, उसकी प्रतीति, ज्ञान और अरागी चारित्र, वह परम स्वास्थ्य है। उसका नाम निरोगता है। बाकी व्यवहाररत्नत्रय भी रोग है। समझ में आया? गजब बात, भाई!

व्यवहाररत्नत्रय अर्थात् क्या? कि सत्देव, सत्गुरु, सत्शास्त्र का स्वीकार, उनका बहुमान, उनका आदर—ऐसा जो शुभराग, वह भी निश्चय से तो रोग ही है। दलीचन्दभाई! उसमें आता है या नहीं लोगस्स में? आरोग्ग बोहि लाभं, समाहिवरमुत्तं दिंत्तु। अभी अर्थ की खबर नहीं होती। शब्द के पाठ की खबर नहीं होती और धर्म करते हैं। किसका नाम धर्म? भगवान! आरोग्यता तो उसे कहते हैं कि जिसमें रोग का अभाव (हो)। रोग का अभाव उसे कहते हैं आत्मा में कि विकार—मिथ्या भ्रान्ति और पुण्य-पाप के विकाररहित स्वभाव के अवलम्बन से शुचि—पवित्रता (वह) आत्मा की निरोगता। राग का कलंक नहीं, राग का मैल नहीं, राग की बीमारी नहीं, पुण्य-पाप की वृत्तियाँ वह सब बीमारी है।

यह शरीर-बरीर बीमारी नहीं। यह तो जड़ है। आत्मा में शुभ-अशुभ जो विकल्प होते हैं कि राग होते है, दया, दान, भक्ति, पंच महाव्रत का जो राग होता है, वह आत्मा में बीमारी है। वह रोग है। आत्मा में रोगरहित दशा.... समझ में आया? तो आत्मा शुद्ध चिदानन्द भ्रान्तिरहित। आता है न उसमें—आत्मसिद्धि में? भाई!

आत्मभ्रान्तिसम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान,
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।

'आत्मभ्रान्तिसम रोग नहीं।' आत्मभ्रान्ति समान जगत में कोई रोग है नहीं।

चिदानन्द भगवान को इन्द्रियों से सुख मिलता है, पुण्य से धर्म होता है, ऐसी मान्यता महारोग है। बड़ा रोग है। 'आत्मभ्रान्तिसम रोग नहीं। सद्गुरु वैद्य सुजान,' सद्गुरु वैद्य, वह भी सुजान—बराबर जाननेवाले नाड़ी पकड़कर कहते हैं कि यह तेरा रोग है। 'गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं,' ज्ञानी ने आज्ञा की, इसके अतिरिक्त कोई जगत में पथ्य दूसरी कोई चीज़ है नहीं। और 'औषध विचार ध्यान'। भाई! यह आया, देखो। यह आत्मा ज्ञायक की ओर का विचार और एकाग्रता, वह औषध है। वह निरोगता होने का उपाय है। बाकी कोई निरोगता होने का उपाय है नहीं। यह बराबर होगा रोग?

शरीर में रोग लगे तो वैद्यों को बुलावे। भाई! क्या है? वह यह कहाँ हो गया यह? भोजन का जहर हो गया कि यह वह गैस हुआ? नली रखो। यहाँ रखे.... यहाँ रखे और सब देखे। यहाँ नली रखी? कि आत्मा ऐसा चिद्घन नित्यानन्द प्रभु की पर्याय, पर्याय अर्थात् अवस्था में जो संसाररूपी विकार, जो पुण्य-पाप और मिथ्या भ्रान्ति और अज्ञान, राग-द्वेषरूपी विकार, वह रोग है। त्रिकाली उसका स्वरूप निरोग है। वह त्रिकाली नित्य ध्रुव शक्ति के अवलम्बन से श्रद्धा, ज्ञान और आचरणरूप वीतरागी अंश प्रगट हुआ, उसे भगवान परम स्वास्थ्य कहते हैं। भाई! यह सब रोगी हैं, यह डॉक्टर भी। सब रोगी मानधाता बड़े धन्वन्तरी वैद्य भी रोगी। उसे भी अभिमान है कि मैं शरीर का (रोग) मिटा दूँ। मर गये सब। शरीर छूटकर दोनों पृथक् पड़ गये। वे पृथक् पड़े परन्तु शरीर की स्थिति से पृथक् पड़े। स्वभाव के भान में पृथक् पड़े, उसे फिर से शरीर नहीं मिलता।

यहाँ तो कहते हैं, परमस्वास्थ्य कहो, निश्चय धर्म कहो, मोक्षमार्ग कहो, वह एक ही बात है। समझ में आया? **वही परम स्वास्थ्य है,....** जरा सा शुभभाव हो, उसे व्यवहार से स्वास्थ्य कहा जाता है। वह तो व्यवहार से भी स्वास्थ्य नहीं, हों! शरीर की निरोगता तो व्यवहार से भी स्वास्थ्य नहीं। आत्मा में आत्मा के लक्ष्य से हुई दृष्टि, ज्ञान और आचरणरूप वीतरागी दशा, वह परम स्वास्थ्य। उसमें टिक नहीं सके, तब शुभराग आता है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, महिमा, प्रभावना, बहुमान, वह व्यवहार स्वास्थ्य। वास्तव में वह भी स्वास्थ्य है नहीं। कहो, समझ में आया? लो! मोक्ष के लिये

तो विचार और ध्यान, यह एक ही उपाय है। औषध, उसकी औषध—औषध। औषध देते हैं न सालमपाक और अमुक पाक और यह क्या, कस्तूरी। समझ में आया? बोलने के लिये। बोल बोल जाग, गरम हो तो बोले। गरम गोली देते हैं। वह क्या कहलाता है तुम्हारे? हिरणगर्भ, हिरणगर्भ। हिरणगर्भ को घिसकर कुछ गर्मी हो। गर्मी तेरे आत्मा में हो, इसलिए हिरणगर्भ देते हैं यह। समझ में आया?

आत्मा सुवर्ण समान लेपरहित, राग और द्वेष की अवस्था तुझमें हो, वह अपराध है। त्रिकाली तो शुद्ध चिदानन्द सुवर्ण समान है। वह इसकी प्रतीति, ज्ञान और एकाग्रतारूप आचरण, वही परम स्वास्थ्य है। वह निरोगता है। वह अशरीरीरूप दशा होने का कारण यह निरोग है। दूसरा कोई निरोग है नहीं। शरीर को जरा निरोगता आवे तो ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। आत्मा की निरोगता में कैसा आनन्द है और किस प्रकार से है, उसकी खबर भी नहीं। इसलिए भगवान उसे बहुत नाम लेकर, यह नाम कहना चाहते हैं।

वही परम वीतरागतारूप है,.... ६१वाँ। परम वीतरागतारूप। यह तो मोक्षमार्ग की बात है, हों! अभी। केवली की नहीं। मोक्षमार्ग की बात है, मुक्ति की राह की बात है, परम शुद्धि के उपाय की बात है। परम कार्यपरमात्मा जो अरिहन्त और सिद्ध, उसके व्यवहारकारणरूप की बात है। मोक्षमार्ग, वह परम वीतरागतारूप है। जिसमें अकेला राग और द्वेष का अंश ही नहीं, ऐसी आत्मा के अवलम्बन से निरालम्बी—राग के अवलम्बनरहित दशा, स्वभाव की अन्तर रुचि, ज्ञान और एकाग्रता को परम वीतरागता कहा जाता है। लो, यहाँ तो परमवीतरागता ले लिया। बारहवाँ और तेरहवाँ। साधक है न सब? मोक्ष का मार्ग है सब।

वही परम साम्य है,.... ६२। परम समतास्वरूप। कौन? यह निश्चयमोक्षमार्ग, सत्य मार्ग। आत्मा ज्ञायक द्रव्य वस्तु की वर्तमान पर्याय का परिणमन, वह स्वभाव के अवलम्बन से जो लीन हुआ, उसे यहाँ परम समतास्वरूप कहते हैं। राग को मन्द करे और जरा क्षमा करे, जगत के लक्ष्य से, जगत के अवलम्बन से अथवा कर्म के डर से, भव के भय से, कर्म के डर से, भव के भय से क्षमा करे, उसे परमसमता नहीं कहते। समझ में आया?

वही परम साम्य है,.... अकेला चिद्घन अन्तर्दृष्टि के अवलोकन में पड़ा है। अपनी दृष्टि के ध्येय में चिदानन्द लिया और जो वीतरागी परिणति अर्थात् पर्याय अर्थात् अवस्था अर्थात् दशा हुई, उसे परमसमतारूप कहते हैं। उसे धर्म कहते हैं और उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। इसके अतिरिक्त कोई मोक्ष का मार्ग व्यवहारिक समता भी नहीं। जगत में कहते हैं न, भाई! बहुत लकड़ियों का प्रहार (खाया), कितना समतावान है। तत्त्व का कुछ भान नहीं होता। तो उसे समता नहीं कहते। जैन दिगम्बर मुनि व्यवहार से द्रव्यलिंगी आत्मा के भान बिना का अन्तिम ग्रैवेयक में जाये। नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया। यह छहढाला में आता है न? अन्तिम ग्रैवेयक में गया। 'आतम ज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' समझ में आया? अनन्त बार क्रियाकाण्ड करके नौवें ग्रैवेयक में गया। समता नहीं। उसे समता कहा नहीं। जिसे शुक्ललेश्या होती है। शरीर के खण्ड-खण्ड करे तो क्रोध करे नहीं। ऐसा द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि मुनि। दूसरे देवलोक की इन्द्राणी डिगाने आवे (तो भी) ब्रह्मचर्य से चलित न हो। तथापि उसे ब्रह्मचर्य भी नहीं और समता भी नहीं। क्योंकि ज्ञायक पुण्य-पाप के विकल्प और वृत्तिरहित, अखण्ड द्रव्य का अवलम्बन आया नहीं, इसलिए उसे समता नहीं कहते। समझ में आया?

इतना कुछ करे। पुण्य करे, पुण्य। शरीर आश्रित क्रिया, पुण्याश्रित क्रिया, वह समता नहीं है। बहुत समता है, देखो! यह मुनि तो भावलिंगी सन्त हैं। भावलिंगी सन्त हैं। परन्तु द्रव्यलिंगी को इस प्रकार कोई जलाये तो क्रोध न करे। इससे उसे समता नहीं कहा जाता। (क्योंकि) वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं। नग्न हो, वस्त्र का धागा न रखता हो, महीने-महीने के अपवास करता हो। भिक्षा के लिये जाये तो ४२, ४७, ९६ दोष अथवा ३२ अन्तराय है न? चौदह मल दोषरहित आहार लेने की वृत्ति होती है, तो भी वह वीतराग श्रद्धा उसे नहीं है। जो आत्मा की लगन बिना का है, वह वृत्ति का उत्थान राग का हो, उस बिना का चिदानन्द दृष्टि में न आवे और वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान और आचरण न हो आंशिक, तो उसे परमसमता नहीं कहते। कहो, समझ में आया?

वही परम एकत्व है,... लो! ६३-६३। सब ६५ बोल है न? ६३। **वही परम एकत्व है,...** एकत्व किया। इसने एकत्व किया। एकत्व कहो या राग और पुण्य से

पृथक्त्व कहो। पर से पृथक्त्व, यह नास्ति से कथन है और वस्तुस्वरूप ज्ञानानन्द में एकाग्रता, वह अस्ति से कथन है। परम एकत्व। निश्चयमोक्षमार्ग कहो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो या परम एकत्व कहो। अपनी वर्तमान दशा स्वभाव में एकत्व हुई। गुण-गुणी अभेद हुए। गुण-गुणी अर्थात्? गुण-गुणी तो अभेद थे। परन्तु गुण की वर्तमान दशा जो राग में अटकती थी, वह वर्तमान दशा गुणी के साथ एक हुई, ऐसी दशा को मोक्ष का मार्ग कहते हैं। कठिन बात भाई! इसमें व्यवहार के गीत कब आयेंगे? साथ-साथ में सुनाते हैं, नहीं? होता है राग, परन्तु वह पुण्य है। होता है, वह व्यवहार, वह रोग है। होता है व्यवहार, वह मलिन है; होता है व्यवहार, वह हेय है। समझ में आया? परम एकत्व है।

दूसरी भाषा से कहें तो व्यवहाररत्नत्रय वह समतास्वरूप नहीं। वह विषमस्वरूप है। व्यवहाररत्नत्रय वह वीतरागरूप नहीं, रागरूप है। व्यवहाररत्नत्रय, वह एकत्वरूप नहीं परन्तु अनेकरूप है। क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय में सत्देव, सत्गुरु, सत्शास्त्र के अवलम्बन से वृत्ति का उत्थान होता है। होता अवश्य है, हों! वह आये बिना रहता नहीं। परन्तु उसकी शरण से चिदानन्द में नहीं जाया जाता। समझ में आया? दोनों समझना चाहिए। जहाँ-जहाँ जो निश्चय है, उसे निश्चय समझना, और उस समय का विकल्प आवे, उसे व्यवहार समझना। उसे विकल्प भी ऐसा ही होता है। सत्देव, सत्गुरु, सत्शास्त्र को वन्दन, सत्कार, बहुमान। समझ में आया? अरिहन्त सर्वज्ञ परमदेव, निर्ग्रन्थ सन्त मुनि और सर्वज्ञ की निकली हुई दिव्यध्वनि / वाणी। वही शास्त्र और गुरु और मुनि, तीर्थंकर प्रकृति का उसे विकल्प और बहुमान आता है, तथापि वह विकल्प—राग है, वह आये बिना रहता नहीं। और आवे, वह धर्म नहीं।

धर्म तो रागरहित स्वभाव में एकत्वपना पावे, उसे धर्म और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। वर्तमान में भाई! बहुत फेरफार हो गया है। लोगों ने बाहर से मानकर ऐसा मनाया है कि अनेकान्त अर्थात् व्यवहार भी करना, व्यवहार से निश्चय मानना और निश्चय करना, इसका नाम अनेकान्त। ऐसा अनेकान्त नहीं है। निश्चय, वह स्वभाव के आश्रय से होता है, व्यवहार के आश्रय से नहीं होता। इसका नाम अनेकान्त स्वरूप है। उसे यहाँ

अनेकान्त और एकत्व धर्म कहते हैं। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... अहो! कायम ज्ञान की दीवार, ज्ञान की दीवार, चिदानन्द नित्य और ध्रुव स्वभाव के अवलम्बन से अन्तर में एकाग्र होना, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र तथा उसे एकत्व कहते हैं। वह एकत्व, वह मोक्ष का मार्ग है। ६३।

६४, **वही परम भेदज्ञान है,....** लो! ६४वाँ बोल। इसका नाम भेदज्ञान। भेदज्ञान अर्थात्? ऐसे देह, वाणी, मन की वर्तमान पर्याय से भी रुचि छोड़कर, वर्तमान राग के परिणाम से रुचि छोड़कर... और ज्ञायक चिदानन्द में एकत्व हुआ, उसका नाम परम भेदविज्ञान है। उसका नाम ध्यान है, उसका नाम मुक्ति का उपाय है। **वही परम भेदज्ञान है,....** भेदज्ञान से कथन किया है। परन्तु एकत्व निश्चय मोक्षमार्ग को ही यहाँ भेदज्ञान कहा है। उसे समयसार नाटक में भेदज्ञान विकल्परूप गिना है। भाई! वहाँ गिना है। विकल्परूपी विनाशिक है। आया है न? है वह। क्योंकि ऐसे भेद करे, भेद करे, वह तो विकल्प है। वह यहाँ नहीं।

यह तो **वही परम भेदज्ञान है,....** निमित्त की पर्यायें वे उसमें (—निमित्त में) है। वर्तमान राग, वह वर्तमान क्षणिक है। मेरा स्वभाव वर्तमान अखण्ड है। ऐसे स्वभाव सन्मुख की एकता को राग और व्यवहार और निमित्त से पृथक् पड़ा, ऐसा भेदज्ञान कहते हैं। धीरुभाई! समयसार में आता है। खबर है? नाटक में आता है। भेदज्ञान ऐसा कि प्रथम आता है, वह विकल्परूप है, विनाशीक है, वह शुद्धोपयोग जैसी निर्मल चीज़ नहीं है। ऐसा वहाँ भाई! आता है। परन्तु वह बात दूसरी है और यह बात दूसरी है। यह भेदज्ञान तो राग से पृथक् पड़ूँ, ऐसा नहीं। परन्तु ज्ञायक सन्मुख अन्दर एकाग्रता हुई, इसलिए राग से भेद हुआ, ऐसी अपेक्षा से उसे भेदज्ञान कहा जाता है। वीरजीभाई! यह आता है उसमें। समयसार नाटक में आता है। तथापि वह तो किस अपेक्षा के कथन हों, उसे समझना चाहिए। वस्तु का मर्म न समझे तो वह गड़बड़ किया करे।

यहाँ भगवान ग्रन्थकार ने कहे हुए एक बोल के इस बोल का वर्णन किया है। **वही परम भेदज्ञान है,....** और टीका में भी बहुत जगह जयसेनाचार्य की टीका में यही आता है। आत्मा की ओर का जो मार्ग, उसे भेदज्ञान कहते हैं, ऐसा जयसेनाचार्य की

टीका में समयसार में बहुत आता है। समझ में आया? यह तो भेद शब्द पड़ा है न, इसलिए भेद में ध्वनि उठती है न दो की? इसलिए वह राग नहीं, यह नहीं, इसलिए उसे वहाँ विकल्पवाला गिना है। परन्तु वास्तविक परम भेदज्ञान वह चिदानन्द ध्रुव के अवलम्बन से एकतापने की स्थिरता का जो अंश प्रगट हुआ, उसे भेदज्ञान कहते हैं। उसे सच्चा मोक्ष का मार्ग कहते हैं और वही मोक्ष की राह है।

अन्तिम बोल इसमें ग्रन्थकार ने कहा हुआ है। **वही परम समरसीभाव है;....** समझ में आया? **वही परम समरसीभाव है;....** परम समता समरसी-समरस। समरस में झूलता हुआ। कहते हैं कि वह आत्मा चिदानन्द नित्यानन्द के अवलम्बन से प्रगट हुई, उसके कारण परमात्मा से परिणमकर कार्य आंशिक जो आया, आंशिक पूर्ण कार्य तो परमात्मा। ऐसा जो परम समरसीभाव वीतरागी उपशम रस, उपशम रस, अकषाय रस, अविकारी दशा स्वभाव के अवलम्बन से हुई, वह परम समरसीभाव है। लो, यह ६५वाँ बोल हुआ। यह किसकी बात चली?

वास्तव में तो '**इणमेव परं हवे ज्झाणं**'। यही जो आत्मा के सुखस्वरूप में परिणमन होना है, वह निश्चय से परम अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञान होता है। यह भगवान ग्रन्थकार नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने ५६वीं गाथा का चौथा पद जो कहा था, उसका स्पष्टीकरण ग्रन्थकार टीकाकार करते हैं।

पश्चात् कहा था, नीचे— **उस परम ध्यान में स्थित हुए जीवों को जो वीतराग परमानन्द सुख प्रतिभासता है, वही निश्चयमोक्षमार्गस्वरूप है। वह दूसरे पर्याय नामों से क्या-क्या कहलाता है, उसको किन-किन नामों से लोग कहते हैं, सो कथन किया जाता है।** यह शुरुआत यहाँ से की थी। समझ में आया? यह शुरुआत यहाँ से ६५ नाम कहकर पूरी की। **वही परम समरसीभाव है; इनको आदि ले...** आदि ले, इस मार्ग को निर्विकल्प समाधि कहते हैं। भाई! अब आदि ले, उसमें थोड़े से दो-चार डालेंगे। ६५ तो डाले हैं न! उसे आदि लेकर निर्विकल्प समाधि भी मोक्षमार्ग को ही कहते हैं। अन्तर में निर्विकल्प समाधि होना, राग बिना की शान्ति दशा होना, उसे निर्विकल्प मार्ग कहते हैं। उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। उसे ही द्रव्य सन्मुख के झुकाव की द्रव्यदृष्टि कहो, प्रतीति

कहो या मोक्षमार्ग कहते हैं। द्रव्यदृष्टि—द्रव्य अर्थात् त्रिकाली भगवान आत्मा, उसकी दृष्टि होना, उस दृष्टि के साथ ज्ञान और रमणता भी साथ में होते हैं। उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। समझ में आया?

उसी पन्थ को सत् पन्थ कहते हैं। यह सत् पन्थ। लोग कहते हैं न सत्संगी। भाई! कहते हैं न? सत्संगी, सत्मार्गी, सत्पंथी। कौन सा सत्पंथी? कौन सा सत्मार्गी? त्रिकाल सत् स्वरूप एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसकी प्रतीति-ज्ञान और आंशिक आचरण वीतरागी होना, उसे सत्पंथी कहते हैं। उसे सत्पंथ कहते हैं। उसे सत्पंथ के आचरण करनेवाले को सत्पंथी कहते हैं। ऐसे स्वभाव के त्रिकाल स्वभाव का संग करके जो वीतरागी अंश प्रगट हुआ, वह सत्संग प्रगट हुआ कहलाता है। वह सत्संग, मोक्ष का मार्ग है। भाई! लो भाई! सत्संग मोक्ष का मार्ग है। कौन सा सत्संग? त्रिकाली सत्... त्रिकाली सत्, एक समय में अनन्त गुण का ध्रुव पिण्ड। उसका संग करके श्रद्धा, ज्ञान और रमणता की, चित्त और राग का संग छोड़ा, उसे सत्संग और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। लो! सत्संग। भाई! लोग नहीं कहते? भाई! भगवान के पास जाना, अच्छे साधु के निकट संग करना। वह तो शुभ विकल्प है। वास्तव में वह सत्संग नहीं। वह वास्तविक सत्संग नहीं। गजब बात, भाई!

और पावे... रात्रि में कहा नहीं था?

बुझी चहत जो प्यास को, है बूझन की रीत,
पावे नहीं गुरुगम बिना यही अनादि स्थित। २
ये ही नहीं है कल्पना, यही नहीं विभंग,
कई नर पंचम काल में देखी वस्तु अभंग। ३

समझ में आया?

पाया की ये बात है, निज छंदन को छोड़,
पीछे लाग सत्पुरुष के तो सब बन्धन तोड़। ६

लो! वहाँ और यह शिक्षा की। परन्तु कहते हैं, वास्तविक सत्संग किसे कहना? समझ में आया? 'पाया की ये बात है, निज छंदन को छोड़', तेरे छन्दन के अभिप्राय—

स्वच्छन्द को छोड़। और स्वभाव निजानन्द भगवान के अवलम्बन से दृष्टि कर तो व्यवहार सत्संग मिला, ऐसा कहने में आता है। निश्चय से सत्संग कहो, मोक्ष का मार्ग कहो, आनन्द की दशा कहो, सब एक है। सत्संगी, वह सत्संगी हुआ।

लोग कहते हैं, भाई! यह सत्संगी व्यक्ति है। नहीं कहते? भगवान! तुझे, सत् किसे कहा जाता है, इसकी खबर नहीं और सत्संगी कहाँ से आया? भीखाभाई! सत्संगी—एक-एक चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द से भरपूर तत्त्व है। मेरा कोई कर्ता ईश्वर है नहीं। समझ में आया? मेरी वर्तमान वीतरागदशा का कर्ता भी विकार नहीं। मेरी व्यवहार पर्याय उत्पन्न हुई राग की, वह भी निर्विकारदशा की कर्ता नहीं। मैं एक स्वाभाविक वस्तु हूँ। आत्मा ही अनन्त गुण का कर्ता होकर वीतराग की परिणतिरूप से स्वयं परिणमता है, उस दशा को सत्संगी दशा कहते हैं। उसे सत्संग और सत्संग का करनेवाला कहा जाता है। समझ में आया? वह मोक्षमार्ग की ही बात लोगों ने कल्पना की, वह नहीं। समझ में आया? उसे ऐसा शुद्ध चिदानन्द आत्मा, वह पुण्य-पाप के परिणाम हैं, उसे स्थूल मार्ग कहते हैं। भाई! निश्चयमोक्षमार्ग, वह सूक्ष्म मार्ग है। समझ में आया?

ज्ञाता चिदानन्द नित्यानन्द के अवलम्बन से जो निर्विकल्प रागरहित प्रतीति, ज्ञान और रमणता, उसे भगवान ने सूक्ष्म मार्ग कहा है। सूक्ष्म मार्ग कहो या मोक्ष का मार्ग कहो। पुण्य के परिणाम, वह सूक्ष्म मार्ग नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय, वह सूक्ष्म मार्ग नहीं है। आता है न, भाई! समयसार में? लोग स्थूल संक्लेश परिणाम को छोड़ते हैं, और स्थूल विशुद्ध परिणाम को अवलम्बन करते हैं। व्यवहार... अकेला आभास। परन्तु पुण्य-पाप के परिणाम स्थूल से रहित ऐसा सूक्ष्म ज्ञायक चिदानन्द भगवान की अन्तर की रुचि, ज्ञान और रमणता करना, उसे सूक्ष्म मार्ग कहते हैं। कहो, समझ में आया? वह सूक्ष्म मार्ग है। क्यों? भगवान आत्मा सूक्ष्म है। उसके गुण सूक्ष्म हैं, उसकी पर्याय निर्विकारी सूक्ष्म है। यहाँ अभी निर्विकारी सूक्ष्म (लेना है)। वह विकार तो अभी स्थूल में गिनना है। समझ में आया?

शरीर, मन, वाणी तो कहीं पर रह गये। परन्तु आत्मा की वर्तमान पर्याय में दया,

दान, भक्ति, स्मरण, सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण, तप, अपवास करूँ, यह विकल्प उठे, उठे वह विकार। पुण्य है, वह स्थूल है। वह मार्ग नहीं है। मार्ग तो ज्ञायक अरूपी अनन्त गुण का सूक्ष्म कन्द, उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (प्रगट हो), उसे सूक्ष्म मार्ग कहते हैं। सूक्ष्म मार्ग कहो या मोक्ष का निश्चय मार्ग कहो। उसे भगवान प्रज्ञाछैनी कहते हैं। भाई! आता है न कहीं? एक प्रज्ञाछैनी में तीनों समाहित हो जाते हैं। समझ में आया? दलीचन्दभाई!

आत्मा की प्रज्ञाछैनी, वह तो भेदज्ञान के अर्थ में यह आ जाता है। प्रज्ञाछैनी पुण्य-पाप का विकल्प और राग को प्रज्ञा ने छेदा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश उसे प्रज्ञाछैनी कहते हैं। निश्चय मोक्ष के मार्ग को प्रज्ञाछैनी कहते हैं। प्रज्ञारूपी छैनी। छैनी समझते हो? लोहे की छैनी होती है न? उससे दो टुकड़े हो जाते हैं। तो कहते हैं कि मैं आत्मा अखण्ड नित्यानन्द हूँ, शक्ति का अन्तर्मुख भण्डार हूँ। और बहिर्मुख जो वृत्ति होती है, उसमें भेद करने के लिये, छेदने के लिये प्रज्ञाछैनी कहो या निश्चयमोक्षमार्ग कहो, (वह साधन है)। समझ में आया? दलीचन्दभाई! लो, यह निश्चयमोक्षमार्ग के अनेक नाम। अनेक पर्याय नामों से कहा जाता है। उसे निर्ग्रन्थ मार्ग कहते हैं। मोक्षमार्ग को निर्ग्रन्थ मार्ग कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय को निर्ग्रन्थ मार्ग नहीं कहा जाता। भाई!

निर्ग्रन्थ मार्ग। उसमें आया नहीं था अभी? संक्षेप से कहा निर्ग्रन्थ मार्ग। समझ में आया?

मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पंथ,
समझाया संक्षेप में, सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।

यह निर्ग्रन्थ अर्थात् राग और पुण्य व्यवहाररहित स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह निर्ग्रन्थ मार्ग है। वह निर्ग्रन्थमार्ग, वही मोक्षमार्ग है, वही वीतरागमार्ग है। उसमें राग आवे व्यवहार, वह निर्ग्रन्थमार्ग नहीं। समझ में आया? वह जैनमार्ग है। भाई! उसमें आता है न? अष्टपाहुड़ में। जैनमार्ग तो मोक्षमार्ग। जैनमार्ग अर्थात् वह। वे व्रत और वह तो पुण्य में जाते हैं। दया, दान, वह पुण्य में जाता है। उसे निश्चय से जैनमार्ग नहीं कहते। समझ में आया?

जिनमार्ग तो जो आत्मा के स्वभाव द्वारा राग को–विकार को जीतकर स्वभाव में अरागी दशा की प्रतीति, ज्ञान और रमणता हो, उस निश्चयमोक्षमार्ग को जिनमार्ग कहते हैं। कठिन बात भाई! तो फिर यह व्यवहार? परन्तु व्यवहार को व्यवहार जिनमार्ग कहा। यहाँ तो निश्चय हो तो उसे व्यवहार आरोप आता है न? बारदान में माल डाले तो यह बारदान चावल का, ऐसा कहलाता है न? बारदान खाली को किस प्रकार कहोगे? बारदान समझते हो न? बोरी। खाली बोरी हो, उसमें चोखा—चावल नहीं, तो किसकी बोरी कहोगे? किसकी बोरी है? इसी प्रकार चावल—अखण्डानन्द भगवान आत्मा स्पष्ट—शुद्ध, उसकी प्रतीति, ज्ञान, रमणता नहीं, उसे राग और पुण्य को बारदान व्यवहार कहना, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

जैनमार्ग अर्थात् जिनपन्थ। वह आत्मा शुद्ध चिदानन्द के अवलम्बन से वीतरागी अवस्था हो, वह जिनमार्ग है। समझ में आया? दूसरा जिनमार्ग है नहीं। व्यवहाररत्नत्रय कहा, वह निश्चय जिनमार्ग नहीं, तथापि वह विकल्प साधक को आये बिना रहता नहीं। सच्चे देव–गुरु–शास्त्र की भक्ति, प्रभावना, प्रमोद आये बिना नहीं रहता। इन्द्र तीन ज्ञान के धनी ऐकावतारी—एकभवतारी, परन्तु उसकी दृष्टि तो आत्मा पर एकाग्र होने पर भी शुभराग आवे तो भगवान के जन्म के समय ऐसे नाच उठता है। नाचे–नाचे। घनघनाहट घनघनाहट ऐसे करे। समझता है कि देह की क्रिया है। मुझे जरा भक्ति आयी है तो यह शुभराग है। परन्तु यह व्यवहार है। उसकी दृष्टि तो अन्तर स्वभाव पर पड़ी है। ऐसे रागरहित दृष्टि, ज्ञान और रमणता को जिनमार्ग कहते हैं।

अन्तिम बोल जिनशासन। लो, भाई! अब जैनशासन कहकर पूरा कर देते हैं। क्योंकि जिनशासन में सब समाहित हो जाता है। '**पस्सदि जिणसासणं सव्वं**' लो, १५ में। दलीचन्दभाई! कितने बोल हुए? होवे वे ठीक। कहो, समझ में आया? जिनशासन। कुन्दकुन्दाचार्य १५वीं गाथा में कहते हैं।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वे ॥१५॥

जिसने आत्मा को बद्धस्पृष्ट रहित, सामान्य एकरूप, निश्चय एकरूप एकधारी

अन्तर्दृष्टि होकर राग और कषाय और पुण्य-पापरहित स्वभाव सन्मुख की दृष्टि करके अनुभव किया '**पस्सदि जिणसासणं सव्वं**' उस मोक्षमार्ग को जैनशासन कहते हैं। उस जैनशासन को मोक्षमार्ग कहते हैं। जैनशासन आत्मा की निर्विकारी पर्याय है। जैनशासन कहीं बाहर में नहीं लटकता। बाहर में नहीं होता। 'न धर्म धार्मिकेय बिना।' समझ में आया? धर्मी ऐसे आत्मा के बिना धर्म नहीं होता। तो धर्म कहो या जैनशासन कहो। वह जैनशासन वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी शान्ति। वह आत्मा के तत्त्व के अवलम्बन से प्रगट हो, उसे जैनशासन कहते हैं, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं, उसे धर्म कहते हैं। समझ में आया? उसे धर्मध्यान की अन्तरंग क्रिया कहते हैं। उसे क्रिया कहते हैं। भाई! उसे सम्यक् क्रिया (कहते हैं)। दूसरी क्रिया नहीं। आत्मा के स्वभाव सन्मुख दर्शन-ज्ञान और चारित्र की एकता, वह सम्यक् क्रिया। वह मोक्ष की क्रिया। बाकी रागादि मोक्ष के पन्थ की कतरणी क्रिया है। समझ में आया? वह यह क्रियापंथ भगवान का है, ऐसा कोई कहे। ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष। तो भी उस ज्ञायक चिदानन्द के अवलम्बन से राग और पुण्य बिना की ज्ञान-दर्शन और उसकी एकाग्रता जो हुई, वह तीन के अंश की क्रिया। पूर्व अवस्था पलटकर वीतरागी अवस्था हुई, इसलिए क्रिया। वह क्रिया है, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। राग और निमित्त की क्रिया को नहीं कहते।

इस प्रकार कहते हैं कि आदि और **सम्पूर्ण रागादि विकल्पों की उपाधि से रहित परम आह्लादक सुखरूप के लक्षण के धारक जो ध्यान है, उस तरफ जो निश्चय मोक्षमार्ग है, उसको कहनेवाले अन्य भी बहोत से पर्याय नाम परमात्व तत्त्व को परमात्मा के सबको जाननेवाले जो भव्य जीव हैं, उनको जान लेना चाहिए।** शिक्षा की है। इसके अतिरिक्त अनेक नामों से कहना हो तो कहा जा सकता है। इतने कहे और इत्यादि कहा जाता है.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोंध - प्रवचन नं. ६ में आवाज अस्पष्ट होने से छोड़ दिया गया है।